THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_178832

UNIVERSAL LIBRARY

राजा साहब

अधिकांश ज़मींदारों तथा तअल्लुक़ेदारों के दैनिक
जीवन का मनोरञ्जक चित्रण, जिन्हें कॉङ्ग्रेस
तथा जनता विनष्ट करने पर कटिबद्ध है

लेखक :

श्री० शौकत थानवी

(सर्वाधिकार संस्था द्वारा सुरक्षित)

प्रकाशक :

कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

रैन बसेरा : इलाहाबाद

1946

मूल्य : ढाई रुपया

मुद्रक : श्री० आर० सहगल

प्रेस : कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड

स्थान : इलाहाबाद

कुछ अपनी कहानी

यह कहानियाँ मैंने उस वक़्त लिखी थीं, जब लखनऊ से मिस्टर आर० सहगल हफ़्तावार हिन्दी अख़बार 'कर्मयोगी' निकाल रहे थे ! मैं हर हफ़्ता राजा साहब के सिलसिले की एक कहानी लिख दिया करता था। मैं उन कहानियों को उर्दू में लिखता था और फिर उनको हिन्दी में छाप दिया जाता था, मगर ज़ुबान बिल्कुल बदली न जाती थी, इस लिए कि सहगल साहब का ख्याल यह है, कि मैं यह कहानियाँ ऐसी ज़बान में लिखा करता था, जो न उर्दू है, न हिन्दी है, बल्कि हिन्दुस्तानी है। मेरी और सहगल साहब की पटी भी इसी लिए कि ज़बान के मामले में मेरा और उनका ख्याल एक है।

मैंने हमेशा यह कहा है कि अगर आपस की ज़िद को बीच से हटा दिया जाए और लिखने वाले यह ख्याल छोड़ दें—कि वह उर्दू लिख रहे हैं या हिन्दी, बल्कि सिर्फ़ यह याद रक्खें कि जो कुछ वह लिखेंगे, उसके पढ़ने वाले सब ही हो सकते हैं, तो सादी और आसान ज़बान भी लिखी जा सकती है और इसी सादी और आसान ज़बान को हम अपनी क़ौमी और मुल्की ज़बान कह सकते हैं। सहगल साहब की यह कोशिश, कि उर्दू के

अच्छे लिखने वालों की चीज़ें हिन्दी ख़त में लिख कर, हिन्दी पढ़ने वालों के सामने पेश की जाएँ और हिन्दी के लिखने वालों की चीज़ें उर्दू ख़त में छाप कर, उर्दू पढ़ने वालों के सामने आती रहें, बहुत ही मुफ़ीद भी है और इस से एकता और समझौते की सूरत भी निकल सकती है। सहगल साहब की यह स्प्रिट अगर सब ही में पैदा हो जाए, तो न ज़बान का झगड़ा रहे, न ज़बानें अलग-अलग करके मिले हुए दिलों को दूर हटाने की ज़रूरत पेश आए।

जिस वक़्त मैं कर्मयोगी के लिए कहानियाँ लिखता था, उस वक़्त मुझ को यह ख़्याल बराबर रहता था, कि कहीं मेरा कोई लफ़्ज़ किसी की समझ में न आया तो बुरा होगा। मैं वही ज़बान लिखना चाहता था जो हिन्दू और मुसलमान सब ही 'हिन्दुस्तानी' आपस में बोलते हैं और समझते हैं, न मैंने कभी "जल" लिखा न "आब" बल्कि "पानी" लिखता रहा, इसलिए कि 'पानी' जल वाले भी जानते हैं और 'आब' वाले भी।

ख़ैर सहगल साहब तो इस सिलसिले में बहुत दूर जा चुके हैं, इनके बच्चे का नाम कृष्ण मोहम्मद है, वह तो—ज़बान क्या, मज़हब भी एक बना देने पर तुले हुए हैं, मगर मैं यह जानता हूँ, कि अगर ज़ुबान एक हो जाए और ज़बान एक करने के सिलसिले में ऐसी ही स्प्रिट पैदा हो जाए, तो यह वह बात होगी, जिसके लिए हिन्दुस्तान तरस रहा है। मगर क़िस्मत तो यह है, कि आपस में फूट डालने के लिए, जहाँ और बहुत से सवाल

उठा दिए गए हैं, वहाँ ज़बान का क़िस्सा भी छेड़ दिया गया है ताकि हिन्दुस्तानियों की आपस की सर-फुटौवल लिटरेचर में भी आ जाए और तारीख़ में ज़िन्दा रहे।

राजा साहब की कहानियों को मैंने एक हिन्दी अख़बार के लिए लिखा, यह हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानों में अब छापी जा रही हैं। अगर हिन्दी पढ़ने वाले कोई मुश्किल लफ़्ज पाएँ, तो बुरा न मानें, इसलिए, कि मैं उर्दू का लिखने वाला रहा हूँ और हिन्दी टटोल तो लेता हूँ, जानता नहीं, उर्दू वाले भी मुझ से ख़फ़ा न हों, इसलिए, कि मैंने जान-बूझ कर उर्दू नहीं, बल्कि बोल-चाल की ज़बान लिखी है, जिसे हिन्दुस्तानी कहा जा सकता है।

अब सब से ज़्यादा मुझको राजा साहबों से मुआफ़ी माँगना है। इस आईना में हर राजा साहब अपना चेहरा देखने की कोशिश न करें। यह एक फ़र्ज़ी राजा है। अलबत्ता अगर किसी राजा साहब के यहाँ भी ऐसे लोग जमा हों और यही अन्धेर-नगरी हो रही हो, तो चौपट राज होने से पहले, वह ज़रा होशियार हो जाएँ तो इससे मुझको या सहगल साहब को नहीं, बल्कि ख़ुद उन्हीं को फ़ायदा पहुँचेगा। राजा साहबों से ख़ुद पूछ लीजिए, कि इस क़िस्म के भोले-भाले रईस होते हैं या नहीं और उनकी रियासत इसी क़िस्म के "जी हुज़ूरों" को माला-माल करती रहती है या नहीं। अगर इन कहानियों से एक राजा साहब भी संभल गए तो मैं समझूँगा कि मेरी मेहनत ठिकाने लगी।

इस किताब के हिन्दी एडीशन का तो ख़ैर कहना ही क्या है, मगर उर्दू एडीशन की लिखाई, छपाई में अगर कोई कमज़ोरी आपको नज़र आए, तो यह समझ कर माफ़ कर दीजिएगा, कि यह एक हिन्दी पबलिशर की उर्दू कोशिश है। आदाब-अर्ज़।

मुमताज़ मन्ज़िल
लखनऊ,

—शौकत थानवी
२६ मार्च १९४६

लेखक

The Karmyogi Press, Ltd.

रस्म-अदायगी

प्रकाशक की ओर से किसी पुस्तक के सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत सफ़ाई देने की एक परिपाटी-सी चली आई है; इसी नाते से मुझे यह रस्म-अदायगी करनी पड़ रही है।

पुस्तक के रचयिता हास्य-रस के प्रसिद्ध लेखक और संस्था के अनन्य शुभ चिन्तकों में हैं, अतएव उनकी प्रशसा मैं क्या करूँ? इस पु तक के सम्बध में उन्होंने अपनी भूमिका में सब कुछ लिख ही दिया है। शौकत साहब की एक बात मुझे ख़ास तौर से पसन्द आई और वह यह, कि वे मनोविज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर ही किसी विषय पर क़लम उठाते हैं और उनकी सफलता का यही रहस्य है। मुझे कुछ दिन ताल्लुकेदारों के गढ़, यानी लखनऊ में रहने का और अनेक ताल्लुकेदार मित्रों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है और इन्हीं अनुभवों के बल पर मैं कह सकता हूँ, कि इस पुस्तक का चरित्र-चित्रण एकान्त स्वाभाविक और सुन्दर हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। जैसा कि शौकत साहब ने कहा है, कि यदि ताल्लुक़ेदारों तथा ज़मींदारों ने इस मज़ाक़िया पुस्तक से कुछ भी लाभ उठाया, तो लेखक तथा प्रकाशक प्रसन्न का होना सर्वथा स्वाभाविक ही है।

जिन दिनों ये कहानियाँ धारावाहिक रूप से 'कर्मयोगी' में प्रकाशित हो रही थीं, तभी से पुस्तक की माँगों के कारण नाक में दम हो रहा था पर

इधर विनाशकारी लड़ाई द्वारा उत्पन्न सर्वथा विपरीत-परिस्थितियों के कारण पुस्तक शीघ्र न छप सकी और न उतनी सुन्दर ही निकली, जैसी हम निकालना चाहते थे, फिर भी आशा है, पाठक इसे पसन्द करेंगे। इस पुस्तक का उर्दू संस्करण भी शीघ्र ही पाठकों के हाथ में होगा।

रैन बसेरा }
इलाहाबाद }

आर० सहगल
२०-६-१९४६

उपहार

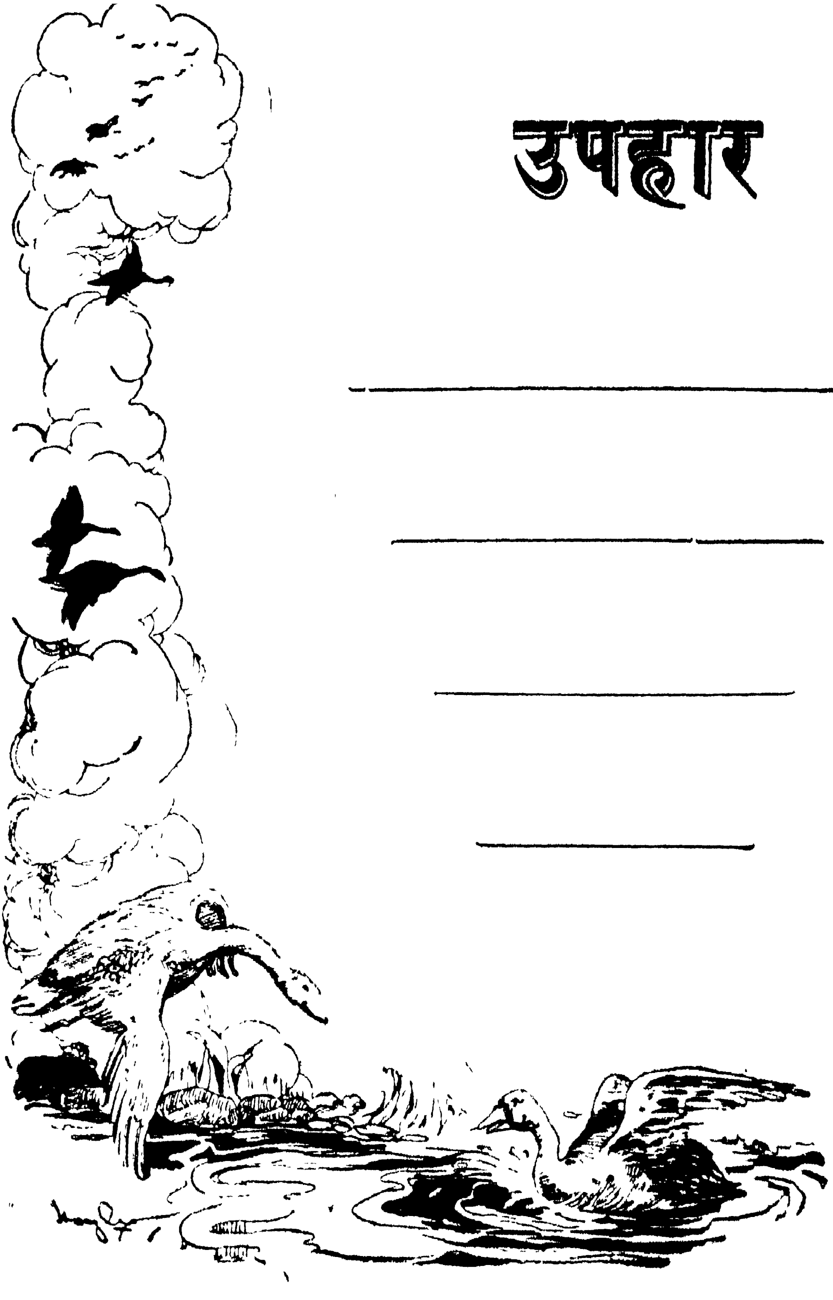

सूची

१—राजा साहब की हुज़ूरी	...	...	१
२—राजा साहब का शिकार	...	...	११
३—राजा साहब की साल-गिरह	...	...	२१
४—राजा साहब का इश्क़	...	...	२६
५—राजा साहब की तलवार	...	...	३७
६—राजा साहब का सफ़र	...	...	४५
७—राजा साहब की लीडरी	...	...	५६
८—राजा साहब का ख़िताब	...	...	६८
९—राजा साहब की सनक	...	...	७५
१०—राजा साहब का उधार-खाता	...	...	८६
११—राजा साहब की बीमारी	...	...	६७
१२—राजा साहब की लड़की की शादी	...	...	१०७
१३—राजा साहब के मैनेजर	...	...	११७
१४—राजा साहब का दिवाला	...	...	१२५

राजा साहब की हुज़ूरी

जिसकी तिजोरी में रुपया हो और सर में दिमाग़ की जगह गूदड़ भर दिया जाय, उसे हम अपनी ज़बान में 'हुज़ूर' कहते हैं। इस क़िस्म के हुज़ूरों के पास रुपया-पैसा, माल-असबाब, धन-दौलत, गाँव-गिराँव सब कुछ हो सकता है, मगर अक़्ल नहीं हो सकती। ऐसे हुज़ूर आपने भी बहुत-से देखे होंगे और अगर न देखे हों तो हमारे हुज़ूर का नमूना देखकर आपको किसी और हुज़ूर से मिलने की ज़रूरत बाक़ी न रहेगी। हमारे हुज़ूर छोटे-मोटे ताल्लुक़ेदार हैं। ताल्लुक़ा तो ख़ैर कोरट हो चुका है, मगर हुज़ूर अब तक हुज़ूर ही हैं, इसलिये कि जो गुज़ारा आपको

मिलता है, वह एक अच्छे-खासे आदमी को हुज़ूर बना देने के लिये काफ़ी है। हम अपने हुज़ूर के नौकर नहीं हैं, न मुसाहब हैं; लेकिन आप जानते हैं कि पड़ोसियों का भी बड़ा हक़ होता है और पड़ोसी होकर इस हक़ से हम अगर फ़ायदा न उठाएँ, तो हमारे और हमारे हुज़ूर की अक़्ल में कोई फ़रक़ बाक़ी न रहे। बहरहाल हमारे हुज़ूर हमारे पड़ोसी हैं और हम उनकी 'परजा' बनकर रहते हैं, ताकि हमको हुज़ूर से फ़ायदे पहुँचते रहें। आप ही बताइए, ज़बान से किसी को सिर्फ़ 'हुज़ूर' कहकर और उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर अगर किसी को दोनों वक़्त तरमाल खाने को मिले, मुफ़्त का थिएटर, बाइस्कोप और दुनिया भर की नेमतें हासिल हों, तो आख़िर इसमें नुक़्सान ही क्या है? हम तो इस बेवक़ूफ़ी के लिये एक मिनिट के लिए भी तैयार नहीं हैं कि कोई बना-बनाया बेवकूफ़ हमको मिले और हम उसको बेवकूफ़ न बनाएँ। अब चाहे कोई हमको ख़ुशामदी कहे या ख़ुदग़रज़, मगर हम तो इसके क़ायल हैं कि दरअसल यह दुनिया इसी क़िस्म के हुज़ूरों पर क़ायम है। अगर ख़ुदा इन अक़्ल के दुश्मनों को पैदा न करता, तो हम ग़रीबों का आख़िर कहाँ ठिकाना होता। अगर ग़ौर कीजिए, तो न यह ख़ुशामद है, न ख़ुदग़रज़ी; बल्कि एक क़िस्म का बिज़िनेस है और बिज़िनेस करना कोई बुरी बात नहीं है।

हमारे हुज़ूर अधेड़ उम्र के आदमी हैं। उनका चेहरा, न तो बिल्कुल इन्सानों के ऐसा है और न बिल्कुल गैंडे की तरह, अलबत्ता यह मालूम होता है कि कोई गैंडा इन्सान बनने की कोशिश में हुज़ूर बनकर रह गया है या हुज़ूर ने ख़ाकसारी के मारे गैंडा बनने की कोशिश की और कामयाब न हो सके। मोटे-मोटे होंठ, छोटी-छोटी आँखें, फूले-

फूले गाल और उन गालों पर चेचक के नक़्शोनिगार ! ख़ैर, यह तो उनकी वह सूरत है, जो .ख़ुदा ने बना दी; मगर इस सूरत को और भी ज़्यादा हसीन बनाने के लिये आपका इन्तज़ाम यह है, कि सर बराबर मुँडता है, आँखों में सुरमा लगाकर स्याही में और भी चमक पैदा की जाती है और पान इस क़दर खाए जाते हैं, कि आपका मुँह अच्छा-ख़ासा मुग़ॅर का उगालदान नज़र आता है। हम तो यह कहते हैं कि इसके बाद भी उनको ज़िन्दा रहने का हक़ हासिल है, मगर यह हक़ उनको यक़ीनन् हासिल नहीं हो सकता, कि वह अपने को इस क़ाबिल समझें कि दुनिया की कोई औरत उन पर आशिक़ हो सकती है और उनके लिये ठण्डी साँसें भर सकती है। मगर इसका क्या इलाज कि हमारे हुज़ूर को अपने मुताल्लिक़ यही ख़्याल है, कि उनको देखकर कोई जवान और .ख़ूबसूरत औरत अपने क़ाबू में नहीं रह सकती, और हम इतने गुनाहगार ज़रूर हैं कि उनके इस ख़्याल पर हँसने के बजाय, उनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते हैं और उनका दिमाग़ इस सिलसिले में जिस क़द्र ख़राब कर सकते हैं, करते हैं।

अभी कल की बात है कि हुज़ूर ने सिनेमा में कॉलेज की कुछ लड़कियों को देखा। हम भी हुज़ूर के साथ थे और हमने उन लड़कियों को .ख़ुद यह कहते सुना था कि कैसा भयानक आदमी यह भी है ! बल्कि एक लड़की ने तो यह भी कहा था कि अगर अकेले-दुकेले इस आदमी का सामना हो जाय, तो इन्सान चीख़ मारकर गिर पड़े ! मगर हुज़ूर को कल से यही फ़िक्र है कि ये लड़कियाँ कौन हैं, कहाँ रहती हैं और फिर क्योंकर इनसे मिला जा सकता है। चुनाँचि सुबह हमको

ख़ास तौर पर घर से बुलाकर यही ज़िक्र छेड़ा गया। मिर्ज़ा साहब, रशीद और मजीद पहले ही से बैठे थे, मगर हुज़ूर हमारी राय को सबसे ज़्यादा मुक़द्दम समझते हैं, लिहाज़ा जैसे ही हम पहुँचे, हुज़ूर ने अपने क़रीब बुलाकर निहायत मुहब्बत से कहा—

"यार, तुम बताओ कि आख़िर ये लड़कियाँ मेरी तरफ़ इस क़दर क्यों मुतवज्जह थीं ?"

हमारे जवाब देने से पहले ही मिर्ज़ा ने कहा—"हाँ साहब, देखना यह है, कि आप क्या कहते हैं, हुज़ूर के नज़दीक हम लोगों की राय तो गोया कुछ है ही नहीं।"

हुज़ूर ने कुछ मुस्कराकर कहा—"अमाँ, यह बात नहीं है, मगर भला यह तो ग़ौर करो कि मुझमें ऐसे कौन-से लाल जड़े हुए हैं कि बस वे लड़कियाँ मुझी को घूरती रह गईं ?"

हमने कहा—"क्या ख़ूब ! आप अपने जड़े हुए लालों को अगर इन लड़कियों की नज़र से देखें, तो कुछ पता भी चले। दूसरे यह कोई नई बात तो है नहीं, आख़िर उस बेचारी शमीम का क्या हुआ था। कि मुजरा करते-करते आपको जो देखा, तो आज तक कौड़ी बनी हुई है।"

हुज़ूर ने ख़ुश होकर हमारी तरफ़ खिसकते हुए कहा—"तुम्हें मेरी क़सम, तो क्या तुम्हारा भी यही ख़्याल है कि वे लड़कियाँ मेरी मुहब्बत का दम भर रही थीं ? यह मिर्ज़ा तो कहते हैं कि उनमें से एक लड़की बार-बार अपने को सँभालती थी, मगर बेक़ाबू हुई जाती थी।"

हमने कहा—"जी हाँ, वह बादामी साड़ी वाली लड़की, जो ज़रा छरीरे बदन की थी, बड़ी-बड़ी आँखें और सर पर घूँघर वाले बाल।"

मिर्ज़ा ने कहा—"जी हाँ, जी हाँ, वही। आप ही बताइए कि उसका क्या हाल था?"

हमने कहा—"हाल क्या था, न वह तमाशा देख रही थी, न उसको किसी और तरफ़ का होश था। बस वह आपको ही देखती जाती थी।"

हुज़ूर ने बहुत ज़्यादा ख़ुश होकर कहा—"मगर भई, वह तो ख़ुद भी आफ़त की परकाला थी।"

मिर्ज़ा ने कहा—"क्या कहना है, हज़ार दो हज़ार औरतों में एक थी।"

रशीद ने कहा—"और साहब, आँख की तो तारीफ़ ही नहीं हो सकती।"

मजीद ने कहा—"आँख में जब मुहब्बत का रस पैदा हो जाय, तो वह आँख बला की ख़ूबसूरत हो जाती है।"

हमने कहा—"यह सब कुछ ठीक है, मगर उस कम्बख़्त के दिल पर जो हालत गुज़र रही थी, उसका अन्दाज़ा तो कीजिये। हमजोलियों का ख़्याल एक तरफ़, अपने ख़ानदान की लाज अलग, शराफ़त का जज़्बा और कुँवारपन की झिझक। मगर हुज़ूर ने उसे ऐसा बेमौत मारा कि बस तड़प-तड़प कर रह गई।"

हुज़ूर ने ख़ासदान बढ़ाते हुए कहा—"लो, पान खाओ। तो क्या वाक़ई वह बहुत बेक़रार थी?"

हमने पान खाते हुए कहा—"मुझे तो ताज्जुब है, कि यह बात आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं, जब कि ख़ुद आप भी मौजूद थे।

हुज़ूर ने कहा—"हाँ, यह तो मैं भी देख रहा था, कि वह बार-बार मुझको घूरती थी। इण्टरवल में उसने एक-आध मर्तबा मुझको देखकर मुसकराने की भी कोशिश की। मगर मैं समझा कि यों ही देख रही है और यों ही मुसकरा रही है।"

मिर्ज़ा ने कहा—"हाँ साहब, आपको अगर उसकी ऐसी ही परवा होती, तो ग़रीब का ऐसा बुरा हाल ही क्यों होता।"

हुज़ूर ने भोलेपन से कहा—"तो भई, आख़िर इसमें मेरा क्या क़ुसूर था? अगर मुझको पहले ही से मालूम होता तो शायद मैं भी मुसकरा देता।"

रशीद ने कहा—"यक़ीन जानिए कि वह रात भर करवटें बदला की होगी।"

मजीद ने कहा—"और मेरा तो ख़्याल है कि उसको हुज़ूर की तलाश भी होगी कि कौन हैं, कहाँ रहते हैं और किस तरह मिल सकते हैं?"

हुज़ूर ने कहा—"यह तलाश तो ख़ुद मुझको भी है, कि आख़िर वह थी कौन?

हमने कहा—"इसमें तलाश की क्या बात है। यह तो मुझको मालूम ही हो गया कि वह यहाँ कॉलेज में पढ़ती है, उसने कॉलेज का टिकेट दिखाकर रियायती टिकेट लिया था और यों भी अन्दाज़ से कॉलेज की लड़की मालूम होती थी, बल्कि मेरा ख़्याल है कि मैंने उसको कॉलेज के सालाना जल्सों में देखा भी है।"

हुज़ूर ने हमारा हाथ दबाकर कहा—"तुम्हें मेरी क़सम, अगर यह

है, तो फिर क्या बात है, तुम बहुत आसानी से उसका पता चला कर मेरा पता उसको बता सकते हो।"

हमने कहा—"तो क्या आप समझते हैं कि मैं इस काम से ग़ाफ़िल हूँ। इसी वक़्त कॉलेज की तरफ़ जाने का इरादा था कि आपने बुलवा लिया। अब यहाँ से उठकर सीधा कॉलेज जाऊँगा। मुझे तो ख़ुद उस भोली-भाली लड़की पर तरस आ रहा है कि मालूम नहीं उसने अपना क्या हाल किया होगा।"

हुज़ूर ने सिगरट का बक्स हमारी तरफ़ रखते हुए कहा—"तो सिगरेट तो लो। अच्छा तो तुम जाओ, ज़रा मालूम तो हो कि यह कौन है, क्या है और इसके मुताल्लिक़ हम लोगों का जो ख़्याल है, वह कहाँ तक ठीक है।"

हम सिगरेट पीकर हुज़ूर से रुख़्सत हुए और अपने दिमाग़ में इस तमाशे का एक प्लॉट बनाते हुए घर आये। अगर सच पूछिए, तो हमारा भी कमाल बहुत बड़ा दर्जा रखता है, हमको हुज़ूर के सामने हँसी नहीं आई। बार-बार दिल चाहता था कि आईना उठाकर हुज़ूर के सामने रख दें कि यह मुँह और मसूर की दाल, मगर हमने अपनी हँसी को रोका और बेवक़ूफ़ को बेवक़ूफ़ी की आख़िरी हद तक पहुँचाकर उससे भी आगे बढ़ाने के ख़्याल से चले आए। हमारे आने के थोड़ी ही देर बाद, जब हुज़ूर महल में चले गए, तो मिर्ज़ा, रशीद और मजीद भी हमारे ही यहाँ आ गए। मिर्ज़ा का हँसी के मारे बुरा हाल था; रशीद भी मारे हँसी के लोटा जाता था और मजीद तो बिल्कुल दीवाना हो रहा था। आख़िर हमने उन तीनों को समझाकर कहा—

"भई, हँसने का वक़्त तो अब आ रहा है। किसी तरह इस प्लॉट को कामयाब हो जाने दो, फिर देखो अपने इस बनमानुस का नाच !! मैंने एक ऐसा प्लॉट बनाया है कि मज़ा ही आ जायगा।"

मिर्ज़ा ने कहा--"और मैंने भी एक प्लॉट बनाया है।"

हमने कहा--"पहले मेरा प्लॉट सुन।"

मिर्ज़ा ने कहा—"नहीं, पहले मेरा।"

हमने कहा—"यह नहीं हो सकता, पहले मेरा प्लॉट सुनना पड़ेगा।"

आख़िर रशीद ने लॉटरी डाल कर मिर्ज़ा का नाम निकाला। मिर्ज़ा ने कहा—"लॉटरी में जीता तो मैं हूँ, मगर अपना हक़ तुमको देता हूँ।"

हमने कहा—"अब होना यह चाहिए कि मैं हुज़ूर को यह ख़ुश-ख़बरी सुना दूँ कि उस लड़की का पता चल गया है और उसने आपका पता लिख लिया है। इसके बाद दूसरे ही दिन उस लड़की की तरफ़ से हुज़ूर को एक ख़त भेजा जाय, जिसमें मुहब्बत का इज़हार हो, मगर फ़िलहाल मिलने से मजबूरी ज़ाहिर की जाय। मतलब यह, कि तोहफ़ा-तहायफ़ का सिलसिला शुरू करा दिया जाय, ताकि हम लोगों की मिहनत का कुछ तो मुआविज़ा मिले।"

मिर्ज़ा ने कहा—"बिल्कुल यही प्लॉट मेरा भी था। मगर इसमें एक बात और होनी चाहिये कि छोटे हुज़ूर (हुज़ूर के साहबज़ादे) को भी मिला लिया जाय, ताकि खाने-पीने के तोहफ़े तो हमारे रहें और बाक़ी ज़ेवर या नक़द वग़ैरह उस ग़रीब को मिलता रहे।"

हम सबने इस तरमीम को मन्ज़ूर कर लिया और इस प्लॉट पर

अमल शुरू हो गया। यहाँ तक कि हुज़ूर बाक़ायदा आशिक़ हो गए, ख़तोकिताबत बड़े ज़ोरोशोर से जारी हो गई। हमारे एक दोस्त के पते पर हुज़ूर के ख़त जाते थे और हमारे यहाँ से उनके जवाब लिखे जाते थे। यारों की चाँदी थी। कभी मिठाइयाँ भेजी जाती थीं और कभी फल, कभी मेवा खाना होता था और कभी नक़द या कुछ ज़ेवर वग़ैरह। ख़ैर, नक़द और ज़ेवर तो छोटे हुज़ूर के क़ब्ज़े में आ जाता था, मगर बाक़ी तमाम चीज़ें हम यारों के हिस्से में आती थीं। आख़िर एक दिन ऐसा मौक़ा भी आ गया, कि हमने दफ़्तर से वापसी पर उन्हीं लड़कियों को फिर सिनेमा की तरफ़ जाते हुए देखा और हुज़ूर को फ़ौरन इत्तला की। बस कुछ न पूछिए कि उस दिन क्या-क्या तैयारियाँ थीं। जल्दी में ख़ुदा जाने कितनी इत्र की शीशियाँ ख़ाली कर डाली गईं और कितना सुरमा आँखों में लग गया। फ़ौरन् मोटर पर हुज़ूर मय हम सबके सिनेमा पहुँचे और इण्टरवल के बाद सिनेमा-हॉल में दाख़िल हो सके। अँधेरे में तो ख़ैर, न हुज़ूर उन लड़कियों को देख सके, न उन लड़कियों ने हुज़ूर को देखा ; मगर जब तमाशा ख़त्म हुआ और हॉल में रोशनी हुई, तो देखते क्या हैं, कि वे लड़कियाँ सामने ही कुर्सियों से उठ रही हैं। हुज़ूर ने अजीब अन्दाज़ से अपनी बादामी साड़ी वाली लड़की को देखा और उसने भी हुज़ूर को देखते ही अपनी सहेलियों से ख़ुदा जाने क्या कहा, कि सब हुज़ूर को देखकर खिलखिलाकर हँस दीं। मगर हुज़ूर इस हँसी के मानी भी वही समझे, जो उनके-ऐसे आला दिमाग़ को समझना चाहिए था। बहरहाल जिस वक़्त सिनेमा-हॉल से वे लड़कियाँ और उनके पीछे हुज़ूर निकले हैं, तो हमने भी देखा कि वे

लड़कियाँ घूम-घूमकर हुज़ूर को देख रही थीं और हुज़ूर इस तरह मुसकरा रहे थे, गोया उनकी मुहब्बत का जवाब दे रहे हैं। यह भी इत्तफ़ाक़ है कि ऐन इसी वक़्त बादामी साड़ी वाली लड़की ने चॉकलेट का काग़ज़ गोली बनाकर फेंका और इधर हमने चुपके से एक काग़ज़ पर लिखा कि "इस वक़्त चले जाओ", और हुज़ूर से कहा कि "इस लड़की ने कोई काग़ज़ फेंका है ?" हुज़ूर ने ख़ुद भी उसको काग़ज़ फेंकते हुए देखा था, लिहाज़ा हमने लपककर अपना लिखा हुआ काग़ज़ उठाया और हुज़ूर को लाकर दे दिया। हुज़ूर ने उसको पढ़ा और चलते-चलते रुककर हम लोगों से कहा—

"सरकार फ़र्माती हैं कि इस वक़्त चले जाओ, लिहाज़ा वापस चलो भाई। फिर देखा जायगा।"

वह 'देखा जायगा' आज तक देखा जा रहा है। और हुज़ूर के हुस्न के सदक़े में हम ग़रीबों का भला हो रहा है !!

राजा साहब का शिकार

हमारे राजा साहब को कभी-कभी शिकार का भी शौक़ होता है। बन्दूक़ चलानी नहीं आती, निशाना हमेशा दो चार गज़ ग़लत बाँधते हैं। शिकार में चलने-फिरने के आदी भी नहीं हैं, बल्कि यह चाहते हैं, कि जिस वक़्त आप जंगल में जायें जानवर ख़ुद ही हाथ जोड़ कर आपके सामने आ जाए और कहे कि "हुज़ूर क्या चाहते हैं?" उस वक़्त हुज़ूर अपनी बन्दूक़ से उसे मार दें। मगर इन तमाम बातों के होते हुए भी, आपका ख़्याल यह है, कि मैं बहुत अच्छा निशानेबाज़ और ज़बर्दस्त शिकारी हूँ। यह ख़्याल, अगर सच पूछिए, तो हम लोगों ने ही राजा साहब के दिमाग़ में पैदा किया है और अगर आप यह पूछें कि इसकी वजह क्या है, तो हम बतायेंगे, कि इसमें हमारे बड़े फ़ायदे हैं। सबसे पहला फ़ायदा तो यह है कि राजा साहब शिकार खेलने के बाद और किसी जानवर को अपनी बन्दूक़ से मार कर इस क़दर ख़ुश हो जाते हैं, कि इस ख़ुशी में उनसे जो चाहे माँग लें और जो बात कहें वो मंज़ूर हो जाय!

दूसरे, राजा साहब की निशानेबाज़ी की तारीफ़ करके जिस वक़्त भी जो चाहो अपना काम बना लो। राजा साहब अब तक बहुत से

हिरन, कुछ तेन्दुए, दो शेर, तीन चार चीते और नहीं मालूम क्या-क्या मार चुके हैं; यानें इनको यह ख़्याल है कि इन्होंने ये सब जानवर ख़ुद मारे हैं ! लेकिन असलियत यह है, कि आज तक एक जानवर भी राजा साहब की बन्दूक़ से नहीं मरा है और न मर ही सकता है इसलिए, कि राजा साहब आँख बन्द करके बन्दूक़ चलाते हैं और बन्दूक की आवाज़ सुनते ही ख़ुद उनके हाथ से बन्दूक़ छूट पड़ती है। अब आप ही बतलाइए कि जो शिकारी आँख बन्द करके बन्दूक़ चलाएगा वह निशाना कैसे बाँध सकता है ? और जो शिकारी बन्दूक़ की आवाज़ सुनते ही बन्दूक़ हाथ से छोड़ देगा, उसका निशाना कैसे ठीक रह सकता है ?? मगर हमारे राजा साहब इन सब बातों के होते हुए भी अपने नज़दीक इस वक़्त दुनिया के नहीं, तो कम-से-कम हिन्दोस्तान के सबसे बड़े शिकारी ज़रूर हैं।

होता यह है, कि राजा साहब ने अपने शिकार का प्रोग्राम बनाया और हम लोगों में से कोई एक आदमी पहिले ही जंगल में शिकार का इन्तज़ाम करने चला गया। मचान बँधवाई, हाँका करने के लिए आदमी जमा किए और उसके बाद उसी शख़्स ने शिकार भी खेल लिया। अब मुर्दा जानवर को झाड़ियों में छिपा दिया गया। इसके बाद राजा साहब आए और फिर से गोया शिकार खेलने का इन्तज़ाम होने लगा। राजा साहब मचान पर बैठे, उनके पास हम लोग और एक आध शिकारी बैठ गया और हाँका शुरू हुआ। आख़िर राजा साहब को बतलाया गया कि इस झाड़ी में जानवर है। झाड़ी भी हिलायी गयी और राजा साहब ने बन्दूक़ उठा कर अपनी आँखों को बन्द किया और अन्ट-शन्ट फ़ायर दाग़ दिया। बन्दूक़ उनके हाथ से

छुट कर गिरी और इधर हम लोगों ने "वो मारा, वो मारा" का शोर बलन्द किया। शिकार की तलाश में लोग झाड़ी के अन्दर गए और थोड़ी ही देर में वही मुर्दा जानवर राजा साहब के सामने लाया गया। बस फिर देखिए राजा साहब की अकड़। मूछों पर ताव भी देते हैं, सीना भी तानते हैं, और फूले नहीं समाते। वही वक़्त होता है, जब कि हम लोग राजा साहब से जो चाहें माँग लें और जो बात चाहें मंजूर करा लें।

इधर बहुत दिनों से शिकार नहीं हुआ था। पिछली बार जब शिकार हुआ था तो राजा साहब ने मीर साहब को एक दुशाला, हमको एक राइफ़ल और मिर्ज़ा जी को एक घोड़ा दिया था। इसलिए हम लोगों ने कहा कि अबकी राजा साहब को शेर का शिकार खिलाया जाय। शेर का शिकार खेल कर राजा साहब २, ३ हज़ार रुपया हम लोगों को दे डालते हैं और इसके अलावा एक-आध हज़ार रुपया शिकार के इन्ज़ाम में भी हम लोग बना लेते हैं। मिर्ज़ा जी ने इस स्कीम को शुरू करने की यह तरकीब निकाली कि एक अंग्रेज़ी अख़बार में से एक महाराजा की तसवीर निकाल ली जिसमें वह अपने मारे हुए शेर पर पैर रक्खे हुए खड़े थे। हमने मिर्ज़ा जी से कहा, "इससे तुम्हारा क्या मतलब है? मिर्ज़ा जी ने कहा, "यार तुम भी राजा साहब के पास रहते-रहते कुछ बुग़द हो गए हो।" मीर साहब ने कहा, "अरे भाई, इस तसवीर से इस मिर्ज़ा को ज़रूर कोई बड़ा काम निकालना है। यह बड़ा भारी घाग है।" हमने कहा, बताओ तो भाई मिर्ज़ा, आख़िर क्या सूझी है?

मिर्ज़ा ने कहा, "भाई यह तसवीर राजा साहब को दिखा कर कहेंगे कि हुज़ूर अब की शेर मारेंगे तो इसी तस्वीर की तरह अँग्रेज़ी अख़बारों में हुज़ूर की तस्वीर भी निकलवाई जावेगी और दुनिया भर में धूम हो जावेगी। हम उछल पड़े और मीर साहब ने ताली बजा कर कहा, "क्या कहना है, मिर्ज़ा को वह सूझी है कि जवाब नहीं।"

हमने कहा, "यार मिर्ज़ा तुमको तो यूनान का कोई हकीम होना चाहिए था तुम भी किस गधे की मुसाहबी कर रहे हो।"

मिर्ज़ा जी ने कहा, "कि इस तस्वीर की छपवाई में हम लोगों का तो कुछ ख़र्च होगा नहीं मगर राजा साहब से हज़ार पाँच सौ रुपया और भी मिल ही जायगा।"

हमने मिर्ज़ा जी को गले से लगा लिया और मीर साहब ने ख़ुश होकर कहा, "कि भाई मिर्ज़ा जी आज ही यह तरकीब करो।"

हम लोग यह बातें कर ही रहे थे, कि राजा साहब भी आ गए और मिर्ज़ा जी के हाथ में तस्वीर देखकर कहने लगे, यह क्या है मिर्ज़ा, किसकी तस्वीर है ?"

मिर्ज़ा जी ने कहा, "हुज़ूर यह महाराजा बीकानेर की तस्वीर है अभी इन्होंने शेर मारा है इसी के साथ यह तस्वीर भी अख़बारों में निकली है।"

राजा साहब ने कहा, "शेर मारा तो तस्वीर निकल गई, हमने भी तो शेर मारा है।"

मिर्ज़ा जी ने कहा "हाँ हुज़ूर अबकी मेरी राय है कि हुज़ूर शेर का शिकार करें तो जहाँ और ख़र्च होता है, वहाँ एक ख़र्च यह भी सही।

अख़बारों में तस्वीर ज़रूर निकले; बड़ी बात होती है तस्वीर निकलने की।"

हमने कहा, "हम लोग तो इन बातों का ख़्याल ही नहीं करते मगर साहब इन्हीं बातों से शोहरत होती है।"

मीर साहब ने कहा, "अमाँ शोहरत, यह कहो कि धूम हो जाती है धूम।"

राजा साहब ने हसरत-भरी निगाहों से तस्वीर को देखते हुए कहा, "अच्छा तो रही अबकी तस्वीर भी।"

मिर्ज़ा जी ने कहा, "क्या कहूँ मैं, शेर के शिकार का तो ऐसा अच्छा मौक़ा आजकल है कि फिर ऐसा अच्छा मौक़ा हाथ नहीं लग सकता। मगर आजकल हुज़ूर जा नहीं सकेंगे।"

राजा साहब ने कहा, "क्यों आजकल क्यों न जा सकेंगे आख़िर कहाँ जाना होगा?"

मिर्ज़ा जी ने कहा, "बलरामपुर में आजकल मेरा एक दोस्त है, बहुत आसानी के साथ पास मिल सकेगा और अगर वहाँ का शेर मिल गया तो फिर होगी अख़बारों में फ़ोटो देखने के क़ाबिल।"

राजा साहब ने कहा, "मैं तैयार हूँ, तुम इन्तज़ाम करो।"

मिर्ज़ा जी ने कहा, "इसमें इन्तज़ाम ही क्या करना है? आज ही तार दिए देता हूँ कि सरकार-आलिम आ रहे हैं, बस सब इन्तज़ाम ख़ुद ही हो जावेगा।"

हमने कहा, "बस तो तुम तार दो, सरकार तो तैयार ही हैं अबकी इतवार को यहाँ से चला जाय और दो तीन दिन शिकार हो जाय।"

राजा साहब ने कहा, "हाँ ठीक है बस।"

इसके बाद देर तक शिकार की बातें होती रहीं और हम लोगों ने राजा साहब की निशानेबाज़ी की ख़ूब-ख़ूब तारीफ़ की। आख़िर में यह तै पाया कि तार देने के बजाय, मिर्ज़ाजी ख़ुद ही बलरामपुर चले जायँ और सब इन्तज़ाम करके तार दे दें ताकि हम लोग इतवार के दिन रवाना हों। इस प्रोग्राम के मुताबिक़ मिर्ज़ा जी को उसी दिन रात को कुछ रुपए देकर बलरामपुर भेज दिया गया और मिर्ज़ा जी ने वहाँ पहुँच कर दूसरे ही दिन तार दे दिया कि यहाँ सब ठीक है, आप लोग इतवार को चल दें। वहाँ उनको ठीक ही क्या करना था! पास लेना था वह मिल गया और कुछ शिकारियों का इन्तज़ाम करके मचान वग़ैरह बँधवा दी गई। राजा साहब के लिए हाथी का इन्तज़ाम भी हो गया। मतलब यह कि जब हम लोग राजा साहब के साथ वहाँ पहुँचे हैं, तो मिर्ज़ा जी का इन्तज़ाम देखकर सब बहुत ख़ुश हुए। हम लोगों के ठहरने का इन्तज़ाम बहुत अच्छा था और उसी के साथ शिकार का भी इन्तज़ाम बिलकुल ठीक। मिर्ज़ा जी ने राजा साहब को ख़ुश देखकर कहा, हुज़ूर यहाँ परदेस का मामला था अगर मैं रुपयों का मुँह देखता, तो कुछ भी न होता। फिर सबको यह ख़बर हो गई कि इतना बड़ा राजा आ रहा है तो पैसे की जगह दो पैसे ख़र्च हुए। मगर आपके इक़बाल से हो गया सब ठीक। अलबत्ता अब ख़र्च को नहीं बचा! मिर्ज़ा जी सब इन्तज़ाम करने के लिए १००० रुपए लेकर चले थे और मुश्किल से दो तीन सौ रुपया ख़र्च हुआ होगा मगर इतना बड़ा राजा कह कर उन्होंने राजा साहब को वह भर्रा दी

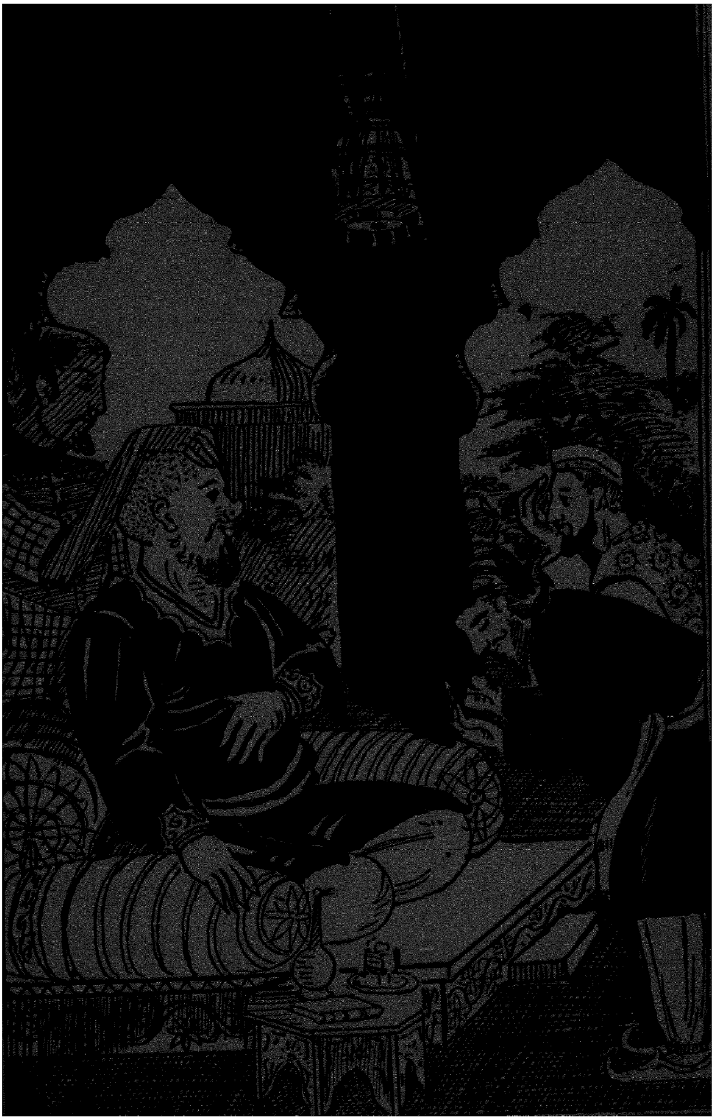

हुज़ूर, जी-हुज़ूरों से घिरे हुए दर्बार का लुत्फ़ उठा रहे हैं !

कि चुपके से एक हज़ार के नोट और गिनवा लिए, उधर सफ़र के इन्त-ज़ाम में हमने और मीर साहब ने दो-तीन सौ रुपए मार दिए थे। बहरहाल हम लोगों की बोहनी अच्छी हो चुकी थी और अभी बहुत कुछ उम्मीद बाक़ी थी। दूसरे दिन हम लोग हाथी पर शिकार के लिए रवाना हुए और हमारे साथ शिकारियों और हाँका करने वालों का पूरा लश्कर चला। शिकारगाह में पहुँच कर हमको कुछ ख़्याल हुआ और हमने मिर्ज़ा जी को अलग ले जाकर पूछा, "अरे यार, यह तो सब कुछ हुआ मगर शिकार का इन्तज़ाम क्या हुआ?"

मिर्ज़ा जी ने हमारा हाथ दबा कर कहा, "चुप रहो जी! मैं कच्ची गोलियाँ खेले हुए नहीं हूँ, बड़ा अच्छा शेर आज सवेरे ही मार लिया गया है और वह झाड़ी में पड़ा हुआ है।"

यह सुनकर हमारी जान में जान आई और अब राजा साहब को मचान पर पहुँचा दिया गया। हम लोग भी इनके साथ थे। जंगल की भयानक ख़ामोशी एक तरफ़ थी और शेर का ख़्याल दूसरी तरफ़। राजा साहब के चेहरे से इस वक़्त यह मालूम होता था, कि वह शेर के पेट के अन्दर ही बैठे हुए हैं। चुपके-चुपके वह कुछ पढ़ भी रहे थे और कुछ काँपते भी जाते थे, कि इतने में हाँका शुरू हुआ और हम लोग बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। राजा साहब की राइफ़ल भी उनके हाथ में दे दी गई मगर वह इस तरह काँप रहे थे कि राइफ़ल हाथ से छूटी पड़ती थी, इसलिए हमने भी अपनी बन्दूक रख कर राजा साहब का राइफ़ल उनके साथ पकड़ रक्खा था, कि इतने में मिर्ज़ा जी ने चुपके से कहा, "वह हिली झाड़ी।"

राजा साहब हमारी तरफ़ खिसक आए और मालूम यह होता था, कि अब चीख़ने ही वाले हैं कि मिर्ज़ा जी ने फिर कहा, "हाँ हाँ, वह है, वह रहा। बस मेरी उङ्गली के सीध में बन्दूक़ उठाइए, देखिए वह है !"

राजा साहब ने काँपते हुए हाथों से बन्दूक़ उठाई मगर बन्दूक़ उस वक़्त इस तरह काँप रही थी कि समझ में न आता था कि इसकी गोली आसमान पर जायगी या ज़मीन में !

मिर्ज़ा जी ने राजा साहब को झाड़ी के अन्दर शेर दिखाते हुए कहा, "वह है मेरी अँगुली की सीध में निशाना लगाइए माथे पर पड़ेगी गोली।"

राजा साहब ने बड़ी मुश्किल से बन्दूक़ के घोड़े पर अँगुली रख कर आँखें बन्द कीं और दाँत पर दाँत बिठा कर फ़ायर कर दिया। फ़ायर की आवाज़ जंगल के सन्नाटे में गूँज गई और बन्दूक़ के मचान से गिरने की दूसरी आवाज़ आई। उधर राजा साहब हमारी गोद में गिरे हुए थे, कि मिर्ज़ा जी ने राजा साहब के हाथ चूम कर कहा, "सदक़े जाऊँ, क्या निशाना मारा है कि माथे पर पड़ा, एक ही फ़ायर में इतना बड़ा शेर ठण्डा कर दिया।" अब राजा साहब की जान में जान आई। नहीं मालूम कितना ख़ून सूख गया होगा। और कितना पसीना इस जाड़े में बह गया होगा। मगर जब राजा साहब ने मरा हुआ शेर अपनी आँखों से देखा तब उन्हें अपनी बहादुरी का यक़ीन हुआ और मारे ख़ुशी के मिर्ज़ा जी से लिपट गए और हम लोग राजा साहब से !

बलरामपुर से राजा साहब को लेकर हम लोग फ़ौरन लखनऊ पहुँचे और लखनऊ पहुँचते ही राजा साहब की तस्वीर शेर के साथ ली गई।

उस तस्वीर में राजा साहब की अकड़ देखने ही क़ाबिल थी। समझ ही में न आता था, कि इन दोनों में से शेर कौन सा है और कोई भी यह नहीं कह सकता था, कि यह वही राजा साहब हैं, जो आँखें बन्द करके बन्दूक़ छोड़ते हैं और बन्दूक़ की आवाज़ सुनकर ख़ुद गिर पड़ते हैं और बन्दूक़ को भी गिरा देते हैं। बहरहाल यह तस्वीर मिर्ज़ा जी ने अख़बारों को भेज दी और ख़ुशक़िस्मती से सब ही अख़बारों ने उसे छाप भी दिया। बस फिर क्या था; राजा साहब एक-एक को वह अख़बार दिखाते थे और ख़ुद हर वक़्त उलट-पुलट कर इन्हीं अख़बारों को देखा करते थे। मिर्ज़ा जी ने दस अख़बारों को यह तस्वीर भेजी थी और हर अख़बार में १०० रुपया तस्वीर छपाई की लागत आती थी। इस हिसाब से १००० का यह नुस्ख़ा तैयार हुआ था। मतलब यह, कि जब शिकार की आमदनी का हिसाब लगाया गया, तो हम तीनों के हिस्से में एक हज़ार से कुछ ज़्यादा ही आया था। और नौकरों चाकरों को जो इनाम दिए गए थे उनसे हमारा कोई मतलब न था। यह तो हुआ नक़द का सौदा। इसके अलावा मिर्ज़ाजी को एक घड़ी दी गई जो हमारे सामने ढाई सौ की ख़रीदी गई थी। मीर साहब को सौ-सौ रुपए की दो जामावार की अचकनें दी गईं और हमको ढाई सौ नक़द मिला। वह तो कहिए, कि आजकल आसामियों से कुछ वसूल नहीं हो रहा है और रियासत की आमदनी ऐसी कुछ कम हो गई है कि चार-चार महीने की नौकरों की तनख़्वाहें बाक़ी हैं, नहीं तो राजा साहब बहुत कुछ देते। शेर का शिकार किया था, किसी गीदड़ का नहीं। और वह भी आँख बन्द करके! बहुत दिनों तक इसी के चर्चे रहे। रानी साहिबा ने राजा साहब से

सदक़ा उतरवाया। छोटी रानी ने दावत की और उसमें भी हम लोगों को इनाम मिले। ख़ैर, यह तो जो कुछ हुआ, सो हुआ; मगर अब तक मज़ा तो इस बात में आता है, कि राजा साहब जब कभी फ़ुरसत से बैठकर शिकार का ज़िक्र करते हैं, हमेशा यही कहते हैं, "कि शेर से भी बड़ा कोई जानवर हो तो उसका शिकार भी मैं इसी तरह कर सकता हूँ। बात यह है, कि निशाना बँध जाना एक बात है, पर मुझको तो याद ही नहीं पड़ता कि मेरा निशाना कभी ग़लत हो या ख़ाली गया हो!"

मिर्ज़ा जी उनकी हाँ में हाँ भी ख़ूब मिलाते हैं, "हुज़ूर ने इस शेर को तो ऐसा मारा है, कि सुना है कि पूरा बलरामपुर इस शेर को मारने की फ़िक्र में था। मगर यह चोट ही न खाता था।" राजा साहब ख़ुश होकर कहते हैं "और मारा भी कैसे, बस एक फ़ायर में।"

हमको और मीर साहब को सख़्त हँसी आती है मगर क्या करें चुप रहते हैं और भी कहना पड़ता है कि सरकार का निशाना देख-देख कर तो बड़े-बड़े शिकारी कानों पर हाथ रखते हैं।

राजा साहब फिर सोच रहे हैं, कि शिकार पर जायँ, मिर्ज़ा जी स्कीम बना रहे हैं और हम ख़ुदावन्द-करीम से दुआ कर रहे हैं, कि वह मौक़ा जल्द आए!

राजा साहब की साल-गिरह

राजा साहब की साल-गिरह तो यूँ हर साल हुआ करती थी; और क्यों न होती? जब परमेश्वर ने उनको धन दिया, तो उनके लिए बुद्धि की ज़रूरत न समझी। धन और बुद्धि बहुत कम एक साथ रहा करते हैं। नहीं, यह साल-गिरह मनाने वाले कम से कम यह तो समझ ही लेते हैं, कि साल-गिरह में ख़ुशी की भला क्या बात होती है। जिसकी उम्र एक साल घट जाय, उसको तो ग़म करना चाहिए कि मरने का वक़्त एक साल और क़रीब आ गया। मगर यह औंधी खोपड़ी के धनवान अपना धन लुटाने के बहाने ढूँढ़ा करते हैं, और यह साल-गिरह वग़ैरह उन्हीं

बहानों में से एक है। तो हम यह कह रहे थे, कि हमारे राजा साहब की साल-गिरह भी हर साल हुआ करती थी। मगर अब की मर्तबा कुछ और ही धूम-धाम थी। पहिले तो साल में बस एक दिन यह ख़ुशी मनाई जाती थी, मगर अब की मिर्ज़ा जी ने और हमने राजा साहब को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि उन्होंने आँखें बन्द कर के अपनी तिजोरी खोल दी और पूरे एक हफ़्ते की रङ्ग-रेलियों का प्रोग्राम बना डाला। यह क्यों कर हुआ ? ज़रा इसको भी सुन लीजिए :

हमने एक दिन मिर्ज़ा जी से कहा कि "भई मिर्ज़ा, यूँ तो परमात्मा का लाख-लाख शुक्र है, उसने राजा के ऐसा आँखों का अन्धा और गाँठ का पूरा शिकार हम शिकारियों को दे रक्खा है, और हम जो चाहते हैं, वह हो जाता है; मगर साल में कम से कम एक मौक़ा तो ऐसा भी होना चाहिए, कि हम दोनों के हज़ार-पाँच सौ भी बन जायँ, और ज़रा चहल-पहल भी रहे।"

मिर्ज़ा जी ने अपनी ऐनक लगा कर जो ग़ौर किया, तो बात में बात निकालनी शुरू की। कहने लगे—"होना तो ज़रूर चाहिए ऐसा कोई मौक़ा। और एक ही ऐसा मौक़ा क्या मानी! हर बात ऐसी होनी चाहिए, जिसमें रुपया बने, इसलिए कि भाई, आख़िर हम लोग भी बाल-बच्चेदार हैं। तो फिर सोचना, कि क्या बात राजा को समझाई जाय। कोई त्योहार बताओ ?"

हमने मिर्ज़ा जी की तरफ़ खिसकते हुए कहा—"त्योहार तो हुआ ही करते हैं, और हर त्योहार पर थोड़ा-बहुत हम लोग मार भी

ते हैं; मगर मेरी राय है, कि राजा साहब की साल-गिरह ज़रा धूम-धाम से हुआ करे।"

मिर्ज़ा जी ने आँखें ऐनक के अन्दर ही अन्दर फाड़ कर कहा—'साल-गिरह धूम-धाम से हो? वह कैसे?"

हमने मिर्ज़ा जी को समझाने के लिए उनके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"भई, यह ऐसे, कि राजा साहब को समझाया जाय, कि साल-गिरह रईसों की तरह किया करें। यह क्या बस एक दिन साल-गिरह हो गई, मिठाई बँट गई, दावत हो गई और क़िस्सा ख़त्म! कम से कम एक हफ़्ता तो जलसा रहे!"

अब मिर्ज़ा जी की समझ में कुछ-कुछ यह बात आई। इतमीनान से बैठ कर बोले—"अच्छा, अच्छा, फिर क्या हो? अरे भई, मेरा मतलब यह, कि पूरी स्कीम बना डालो ना।"

हमने कहा—"सुनिए, होना यह चाहिए कि साल-गिरह का एक पूरा हफ़्ता मनाया जाय। हफ़्ते-भर दावतें जलसे हों। हाँ, एक दिन हाकिमों का डिनर और आतिशबाज़ी, दूसरे दिन दोस्तों की दावत और नाच-रङ्ग की सभा, तीसरे दिन गार्डन-पार्टी और कवि-सम्मेलन, चौथे दिन ग़रीबों का खाना और दान देना, पाँचवें दिन अपनी रियाया को खिलाना, उनसे नज़राना लेना और उनमें मिठाई बँटवाना, फिर रात को रईसों की दावत और नाच का जल्सा।"

मिर्ज़ा जी ने ख़ुश हो कर कहा—"और इन सब बातों का इन्तज़ाम हमारे हाथ में होगा। रुपया की जगह आठ आना का ख़र्च होगा। और रुपया की जगह दो रुपए का ख़र्च दिखाएँगे।"

हमने मिर्ज़ा जी के मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—"मिर्ज़ा, यह बातें कहने की नहीं हुआ करतीं, इनको ज़बान से न निकालो; करो चाहे जो कुछ, मगर कहो कुछ नहीं।"

मिर्ज़ा जी ने जल्दी से कहा—"तो फिर कहो न राजा साहब से, अगले ही महीने तो साल-गिरह है। अभी से राजा को न समझाओगे, तो फिर कब वक़्त आएगा ?"

हमने हँस कर कहा—"जल्दी न करो। इस क़िस्म की बातें यूँ कहने की नहीं हुआ करतीं। याद रखो मिर्ज़ा ! कभी सामने से हमला न करना। ऐसे हमले घुमा-फिरा कर किए जाते हैं। अब करो यह, कि आज राजा साहब से यह कहो, कि हम दोनों राजा साहब मुराद-नगर की साल-गिरह में जा रहे हैं, और हम ही दोनों साल-गिरह का सारा इन्तज़ाम करेंगे। फिर राजा साहब को साल-गिरह के इन्तज़ामों का ऐसा नक़शा खेंच कर दिखाएँगे कि वह भी क्या याद करें।"

मिर्ज़ा जी ने बात काट कर कहा—"भई, क्या तरकीब निकाली है ! इस तरह हमारे इन्तज़ाम की धाक भी बैठ जायगी और साल-गिरह कैसी होती है एक रईस की, इसका भी पता राजा को चल जायगा।"

हमने कहा—"यह, अब समझे तुम ! अच्छा, तो फिर चलो। बस हम दोनों एक दूसरे की हाँ में हाँ मिलाते रहेंगे।"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"अरे ख़ैर, यह तो होता ही है।"

हम दोनों साल-गिरह का प्रोग्राम दिल ही दिल में बनाते हुए राजा साहब के यहाँ गए। राजा साहब इस वक़्त नहा-धो कर साफ़-साफ़ मोती

पिरोए बैठे हुए; अपनी तरबूज़-सी तोंद पर हाथ फेर रहे थे और मुड़ी हुई खोपड़ी को तेल पिलाया जा रहा था। हम लोगों को देखते ही कहने लगे—"भई, इस वक्त, जो माँगता, वह मिल जाता। अभी आदमी को भेजने ही वाला था, कि तुम को बुला लाए। मतलब यह, कि कल इरादा है कि शिकार पर चला जाय, ज़रा दिलचस्पी रहेगी।"

हमने कहा—"क्या अर्ज़ किया जाय, हुज़ूर। हम लोग तो ख़ुद ही रुख़सत होने के लिए आए थे। रात की गाड़ी से मुरादनगर जा रहे हैं हम दोनों।"

राजा साहब ने तआज्जुब से पूछा—"मुरादनगर ! यह आख़िर मुरादनगर की क्या सूझी ?"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"राजा साहब मुरादनगर की साल-गिरह है न।"

हमने कहा—"और उसका सारा इन्तज़ाम हम ही लोग करते हैं।"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"हम लोगों के इन्तज़ाम-बग़ैर राजा साहब को चैन ही नहीं आता।"

हमने कहा—"होता भी तो है शाहो इन्तज़ाम ! पूरे हफ़्ते का जल्सा, पचासों दावतें, हज़ारों महमान; फिर महफ़िलों पर महफ़िलें, नाच-रङ्ग, हाकिमों का डिनर, लञ्च, पार्टियाँ...!"

राजा साहब ने कहा—"हर साल यह सब कुछ होता है ?"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"हर साल, हुज़ूर ! हर साल ! साल-गिरह के जल्सों के लिए एक लाख की मञ्जूरी है। मुरादनगर में कौन ऐसा हाकिम

है, जो वहाँ न जाय, और कौन-सा ऐसा रईस है, जो मेहमान न बने!"

हमने कहा—"यही तो वजह है, कि आज हाकिमों पर राजा साहब मुरादनगर का जो असर है, वह किसी का नहीं। बड़े-बड़े अङ्ग-रेज़, यह समझ लीजिए, कि पानी भरते हैं उनके यहाँ!"

राजा साहब ने कहा—"मगर भई, कुछ भी हो, हर साल इतना रुपया ख़र्च करना भी अन्धेर है!"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"मगर हुज़ूर काम भी वैसे ही निकलते हैं इस रुपए के ज़ोर पर!"

हमने कहा—"अब देख लीजिए न, कि कमिश्नर-तक राजा साहब को देख कर खड़े हो जाते हैं। गवर्नर साहब तक हाथ मिलाते हैं! फिर यह कि गवर्नमेन्ट-हाउस की हर दावत में कोई हो या न हो, मगर राजा साहब मुरादनगर ज़रूर होते हैं। ख़िताबों पर ख़िताब मिल रहे हैं!"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"अब तो सुना है, वज़ीर होने वाले हैं!"

हमने कहा—"वह तो हो ही जायँगे। फिर यह, कि उनका कोई नुक़सान थोड़े ही है। आधा ख़र्च तो रियाया के नज़रानों से निकल आता है, और आधे ख़र्च में यह इज़्ज़त और यह ख़िताब मिलते हैं।"

राजा साहब ने ठण्डी-साँस ले कर कहा—"और एक हमारी साल-गिरह होती है...!"

मिर्ज़ा जी ने बात काट कर कहा—"हुज़ूर, आप अपनी न कहें।

खता माफ़, आपके यहाँ तो हाल यह है, कि लाख लुटे और कोयलों पर मोहर !"

हमने कहा—"हज़ार मर्तबा सरकार से अर्ज़ किया कि रईस रुपए का मुँह नहीं देखते और यही मौके होते हैं हाकिमों में अपना असर पहुँचाने के ! मगर हुज़ूर को तो जैसे परवाह ही नहीं है !"

राजा साहब ने कहा—"अरे भई, अगले महीने हमारी साल-गिरह भी तो है। आख़िर बताओ न, कि क्या खर्च होगा, किस-किसको बुलाया जायगा, कहाँ-कहाँ कौन महमान रहेगा ? मतलब यह, कि तुम हमारे हो कर दूसरों का इन्तज़ाम करो, दूसरों को धरती से उछाल कर आकाश पर चमकाओ, और हम यूँ ही रहें !"

मिर्ज़ा जी ने हमको आँख का इशारा किया और हमको हँसी आ गई, कि फाँसा शिकार ! हमने राजा साहब से कहा—"भला हुज़ूर, कोई बात भी हो ! अगर सरकार का मतलब यह है, कि हम लोग मुरादनगर न जायँ, तो हर्गिज़ न जायँगे।"

राजा साहब ने कहा—"नहीं, मैं जाने को मना नहीं करता, मगर यह तरकीबें तो यहाँ के लिए होनी चाहिएँ !"

मिर्ज़ा जी ने कहा—"हुज़ूर इजाज़त दे दें—और खर्च की मन्ज़ूरी मिल जाय; फिर देखिए, कि आपके ग़ुलाम क्या करते हैं !"

राजा साहब ने कहा—"ऐसी बातें करते हो मिर्ज़ा, कि बस जी हिल जाता है। तुमको किस दिन मैंने खर्च के लिए रोका है। अरे भई, तुम जो कुछ करते हो मेरी भलाई के लिए ही तो करते हो। अच्छा जाओ,

हमारी तरफ़ से इजाज़त है, मनाओ साल-गिरह और करो ख़र्च, जो तुमसे किया जाय।"

राजा साहब की मन्ज़ूरी लेने के बाद हम दोनों को तो जैसे मुँह-माँगी मुराद मिल गई और शुरू कर दिया हम दोनों ने मिल कर इन्तज़ाम। एक-एक पैसे की जगह दमड़ियों और धेलों को ख़र्च किया मगर ख़र्च लिखते वक़्त पैसे की जगह चार पैसे जोड़े। साल-गिरह का जशन तो ऐसा मनाया गया, कि बस देखने वालों के मुँह से वाह निकलती थी और राजा साहब का तो यह हाल था, कि ख़ुशी के मारे कुछ और फूल गए थे! ख़ुशी की बात भी थी कि एक से एक रईस और बड़े से बड़ा हाकिम, सब उनके दरवाज़े पर मौजूद थे, नाच-रङ्ग की महफ़िलें अलग थीं, दावतों की धूम अलग थी। रियाया पर डण्डे बरसा बरसा कर नज़राने वसूल हो रहे थे, और रियाया जी खोल-खोल कर राजा साहब को ऐसा कोस रही थी, कि उसका कोसना हमारे और मिर्ज़ा जी के लिए दुआ बन कर लग रहा था। राजा साहब ने साल-गिरह के हफ़्ते के बाद हमको और मिर्ज़ा जी दोनों को एक-एक सोने की घड़ी, एक-एक चाँदी का ख़ासदान और पाँच-पाँच सौ रुपए इनाम में दिए। ख़ैर, यह तो राजा साहब ने दिया था, मगर वैसे भी हम दोनों ने हिसाब जो लगाया, तो पता चला, कि कोई पाँच-पाँच हज़ार के लगभग हम लोग यूँ भी बना चुके थे!

राजा साहब का इश्क़

अगर आप किसी मटके पर क़ीमती रेशम का गिलाफ़ चढ़ा दें, तो भी वह मटका ज़रूर मालूम होगा। बिल्कुल यही हाल हमारे राजा साहब का समझ लीजिए, कि मुँड़े हुए सर पर कारचोबी की टोपी पहिने और बड़ी-सी तोंद पर रेशम और जामदानी के क़िस्म के क़ीमती कपड़े पहनने के बाद भी वह कुछ कार्टून-से नज़र आते थे। अगर उम्दा कपड़े ही आदमी को ख़ूबसूरत बना दिया करें, तो दुनिया में इन राजाओं से ख़ूबसूरत शायद कोई भी न हो; मगर परमेश्वर की लीला तो कुछ ऐसी है, कि जितना ही ये धनवान् राजा अपना बनाव-सिंगार करते हैं, उतने ही बेढंगे और बेतुके नज़र आते हैं। भारी-भारी झूल डाल देने के बाद आपने किसी हाथी को भी देखा है कि वह मोर की तरह रंगीन, हिरन की तरह नाज़ुक और कबूतर की तरह साफ़-सुथरा नज़र आए? जी नहीं; तो वह हर हालत में काला-कलूटा और भद्दा हाथी ही नज़र आएगा। हमारे राजा साहब के सूँड तो ख़ैर नहीं थी; और न हाथी की तरह दो लम्बे-लम्बे दाँत, मगर उसके बाद भी उनका काला रङ्ग,

उनका मुटापा और उनका भारी-भरकमपन बहुत कुछ उनको हाथी बनाए हुए था। ज़रा ग़ौर तो कीजिए कि दुनिया की कोई अन्धी औरत भी ऐसे डरावने प्रीतम से प्रेम कर सकती है और ऐसे "जू जू" से प्रीत की रीति निभा सकती है ? मगर यह भी सच है, कि धन सब से बड़ी सुन्दरता है। कोई प्रेम करे, या न करे, मगर आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे धनवान् को बेवक़ूफ़ बनाने का तो हर एक को अधिकार है !

राजा साहब के वास्ते हम लोगों ने सोचा कि उनको कहीं इश्क़ कराया जाए। यह तरकीब मिरज़ा जी के दिमाग़ से निकली थी और जब उन्होंने हम लोगों को बताया कि राजा साहब को कहीं इश्क़ कराने में क्या-क्या फ़ायदे हैं, तो हम सब ख़ुशी के मारे उछल पड़े। मिरज़ा जी ने यह सब बातें सोची ख़ूब थीं। और सूझी उनको यह इस तरह थी, कि अभी कल ही राजा साहब ने एक शादी की महफ़िल में 'चन्दा' का गाना सुना था और कल से आज तक कई मरतबा 'चन्दा' के गाने का ज़िक्र कर चुके थे। वह गाती तो ख़ैर ऐसा ही थी, कि बस ज़्यादा-से-ज़्यादा राजा साहब ख़ुश हो लें, वरना सङ्गीत-विद्या से उसको इतना ही लगाव था, जितना हमारे राजा साहब को समझदारी से ! मगर यह बात ज़रूर थी, कि जवान थी। चेहरा-मुहरा से दुरुस्त थी और फिर रङ्ग-रूप निकालने में तो उन लोगों को कमाल आता ही है। असल में गाना-बाना तो ख़ैर क्या, हमारे राजा साहब को तो शायद वह ख़ुद ही अच्छी लगी थी। इस बात को ताड़ तो हम सब गये थे, मगर मिरज़ा जी ने इसपर ग़ौर करके पूरी स्कीम बना ली और हम सब ने उसको सोलह आने मञ्ज़ूर करके यह तय कर लिया, कि राजा साहब को

आशिक़ बना कर छोड़ेंगे। रात को, खाने के बाद, राजा साहब ने फिर ज़िक्र शुरू करते हुए कहा—"भई, चन्दा गाती ख़ूब है! क्या गला पाया है और आवाज़ में क्या रस है!" मिरज़ा जी ने फ़ौरन कहा—"हुज़ूर, गाना तो उसका मैंने पहिले भी सुना है, मगर कल तो उसका यह हाल था, कि जैसे कोई ज़ख़्मी हिरनी अपने शिकारी के सामने तड़प रही हो।"

राजा साहब ने चौंक कर कहा—"बात क्या कही है, भई मिरज़ा साहब—मगर मैंने समझा नहीं, कि तुम्हारा मतलब क्या है।"

हमने हँसी को रोक कर कहा—"सरकार ने असल में उसकी हालत का अन्दाज़ा किया ही नहीं; हालाँकि महफ़िल में तो सभी थे, मगर वह हुज़ूर ही की तरफ़ मुख़ातिब रही।"

राजा सहाब ने हमारी तरफ़ रसगुल्लों का प्लेट बढ़ाते हुए कहा—"हाँ यह तो मैंने भी देखा, कि वह बस मेरी तरफ़ घूम-फिर कर आती थी। मगर इससे मतलब?"

मीर साहब ने गरदन झुका कर निहायत लापरवाही से कहा—"गा थोड़े रही थी! वह तो कलेजा निकाल-निकाल कर रखे देती थी।"

मिरज़ा जी ने बात काट कर कहा—"मेरी आँखों में ख़ाक, कल हमारे सरकार की छबि भी तो ऐसी थी, कि दुहाई है! जामदानी का अँगरखा फूटा निकलता था; उसपर से चूड़ीदार जाली वाला पाजामा!"

हमने कहा—"हुज़ूर, मैंने तो कल की ऐसी फबन कहीं देखा ही नहीं। सारी महफ़िल में हुज़ूर बस अलग ही नज़र आ रहे थे।"

राजा साहब ने खाने से हाथ रोक कर ख़ुशी के मारे बदहवास

होकर कहा—"अरे भई, मैंने योंही वह लिबास पहन लिया था। मुझे क्या मालूम था, कि वह तुम लोगों को ऐसा पसन्द आएगा।"

मिरज़ा साहब ने कहा—"हम लोगों को जाने दीजिए। पसन्द तो बस जिसने किया है उसने किया है।" राजा साहब ने मिरज़ा साहब की तरफ़ खिसकते हुए कहा—"किसने भई, आखिर किसने ?"

हमने कहा—"किस हसरत से महफ़िल के बाद उसने पूछा, कि ये कौन हैं ?"

राजा साहब ने अपनी तोंद पर हाथ फेर कर बड़े शौक़ से पूछा—"यानी मुझको पूछा—तुम्हारा मतलब यही 'चन्दा' ने।"

मीर साहब ने कहा—"पूछा ही नहीं, बल्कि—"

राजा साहब एक दम से मीर साहब की तरफ़ घूम पड़े—"बल्कि—बल्कि—अरे भई, बताओ ना कि क्या बल्कि—।"

हमने कहा—"मैं बताए देता हूँ सारी बात! महफ़िल के उठते ही उसका तबलिया मेरे पास आया कि बाईजी बुला रही हैं और कहती हैं, कि गुस्ताख़ी माफ़ करके, बस एक बात सुन लीजिए। मैं जो वहाँ गया, तो देखता क्या हूँ, कि बात तो मुझसे हो रही है और टकटकी बँधी हुई है हुज़ूर की तरफ़।"

राजा साहब ने कहा—"मगर वह बात क्या कही उसने।"

हमने कहा—"आपके मुताल्लिक़ पूछा और जब मैंने हुज़ूर का नाम वग़ैरह बताया, तो एक ठण्डी साँस लेकर बोली, कि वाह री क़िस्मत! दिल भी लगा तो कहाँ, जहाँ तक पहुँचना ही मुश्किल है!"

राजा साहब

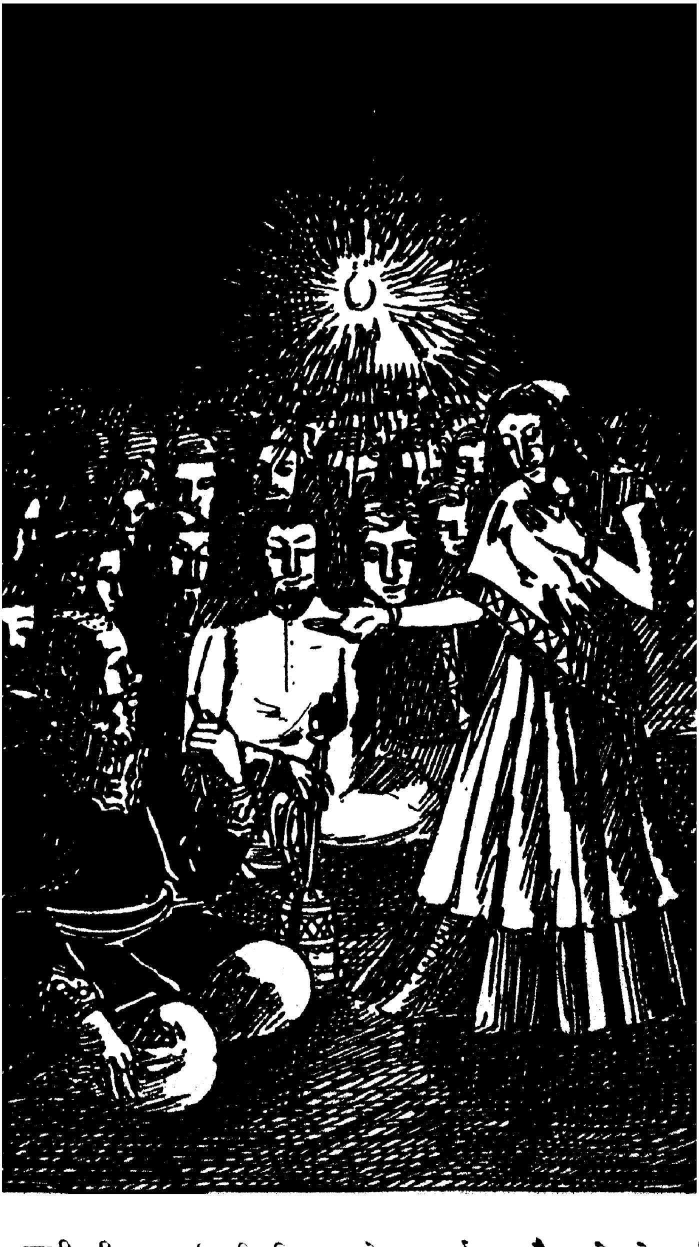

ख़ुशी की बात भी थी, कि एक से एक रईस और बड़े-बड़े हाकिम दर्वाज़े पर मौजूद थे, नाच-रंग की महफ़िलें सजना थी......

राजा साहब ने ख़ुशी के मारे हमारे कन्धों पर हाथ रख कर कहा—"तुम्हें हमारी क़सम !"

मिरज़ा साहब ने कहा—"उनके बाद मैं बुलाया गया और मुझसे भी यही सवाल हुआ। आख़िर कहने लगी कि अपने सरकार की कोई तस्वीर हो, तो मुझको भिजवा दीजिए। यह अहसान ज़िन्दगी-भर न भूलूँगी।" राजा साहब ने ख़ुशी के मारे पाँच रसगुल्ले एक साथ मुँह में रखते हुए कहा—"अच्छा ! अच्छा तो फिर तुमने क्या किया ?"

मिरज़ा साहब ने हाथ जोड़ कर कहा—"हुज़ूर, ख़ता माफ़। मैंने उसकी हालत पर तरस खाकर हुज़ूर की वह तस्वीर जिसपर सोने का फ़्रेम था, सुबह चुपके-से उसके आदमी को दे दी। उसने सुबह तड़के ही आदमी भेजा था।"

राजा साहब ने ख़ुश होते हुए कहा—"अरे भई, वह तस्वीर तो यों ही सी थी। मगर ख़ैर, तुमने अच्छा किया—तो ये बातें भला हमसे क्यों छिपाई गई हैं अब तक ?"

हमने कहा—"सरकार, डर भी तो कोई चीज़ है। हुज़ूर को भला ऐसी-ऐसी औरतों की क्या परवा हो सकती है ! वह मरती है, तो मर जाए सरकार की बलाएँ लेकर।"

राजा साहब ने कहा—"मगर अब यह तो पता चलाओ कि उसका हाल क्या है। भई, यह तो अजीब तमाशा हुआ। मगर ताज्जुब है कि आख़िर उसको सूझी क्या !"

मिरज़ा साहब ने कहा—"हुज़ूर दिल ही तो है।"

हमने फ़ौरन एक क़िस्सा गढ़ कर कहा—"सरकार, सब से बड़ी

बस यह कि यह 'चन्दा' उन औरतों में से है, जिसने राजा साहब खोंड़-गाँव के आदमियों को खड़े-खड़े अपने यहाँ से निकलवा दिया था, और पाँच हजार रुपए की नौकरी से साफ इनकार कर दिया था।"

मीर साहब ने कहा—"एक राजा साहब खोड़गाँव ! डाक्टर साहब नन्दपुर और नवाब साहब बाजनगर वालों ना इसके पीछे तबाह हो गए, मगर इसने कहीं सीधे मुँह बात तक न की।"

राजा साहब ने मेढक की तरह फूलते हुए कहा—"भई, तो मालूम है कि आखिर यह वाक़या क्या है ? मेरे ख्याल में तो अभी रात ज्यादा नहीं गई। मोटर लेकर जरा देखो तो सही कि हाल क्या है ?"

राजा साहब ने जबरदस्ती हम सब को चन्दा के यहाँ रवाना कर दिया। वह एक घुटे काम की बाजारू औरत हम लोगों को देखते ही आँखें बिछाने लगी। और हमने निहायत खूबसूरती के साथ उसको एक-एक बात बना कर साफ कह दिया, कि यह सोने का उल्लू फँस रहा है। इसमें तेरा तो खैर फायदा है ही, मगर हमारा फायदा तुझसे ज्यादा हो। उसको भला क्या इनकार हो सकता था। उसके यहाँ तो ऐसे-ऐसे उल्लुओं के लिए कारोबार ही होता था। वह फौरन हमारे मशविरों पर तैयार हो गई। हालाँकि हँसी के मारे उसका बुरा हाल था। जब उसको राजा साहब की सूरत याद आती थी, हँसी के मारे लोट जाती थी! फिर इस ख्याल पर और भी हँसी आती थी कि इन्हीं राजा साहब से मुहब्बत करना है और इनके इश्क में मरना है। हम लोगों ने उसको मशविरा दिया कि आज ही कल में जब राजा साहब से मुलाकात हो, तो बस मर ही जाना और खबरदार हँसी ज़रा भी न

आए। बल्कि, अगर राजा साहब अपने को ख़ुद ही बदसूरत कहें, तो बुरा मान जाते और कहते कि लैला को मजनूं की आँखों से देखना चाहिए। एक तो वह ख़ुद छँटी हुई, उसपर से हम लोगों के मशविरे, नतीजा यह हुआ कि हमारा खेल ऐसा बना कि पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में नजर आने लगा। राजा साहब को वापस जाकर 'चन्दा' की हालत सुनाई कि बस आप ही के नाम को जपती है और हर वक़्त आपकी तसवीर आँखों के सामने है। राजा साहब को शायद उस रात नींद भी मुश्किल ही से आई होगी। चुनाँचे दूसरे दिन सुबह ही हम सब को बुला भेजा। अब जो हम देखते हैं तो राजा साहब नहाये-धोये बाल-बाल मोती पिरोये, ख़िज़ाब लगाए, काजल पारे, इत्र में डूबे हुए अपने मोटर के पास टहल रहे हैं। हम लोगों को देखते ही बोले—"चलो भई, अपनी आशिक़, चन्दा, के पास चलें।"

यह सुनते ही मिरज़ा साहब को तो साँप सूँघ गया, इसलिए कि चन्दा का कमरा बड़ा थर्ड क्लास था और मीर साहब भी यह सोच कर सिटपिटा गए कि चन्दा जाने इस वक़्त किस हालत में हो। मगर हमने अपने हवास दुरुस्त रखते हुए कहा—"सरकार, ऐसा ग़ज़ब भी न कीजिएगा। अगर आप वहाँ पहुँच गए, तो बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। अलबत्ता यह हो सकता है, कि मैं जाकर उसको ले आऊँ। वह सर के बल परिक्रमा करती हुई आएगी। मगर हाँ, उसकी माँ को ज़रा रुपए की शक्ल दिखानी पड़ेगी।"

राजा साहब ने कुछ सोच कर कहा—"यह ठीक है कि मैं न

जाऊँ। तुम जाओ। और लो, यह थैली रुपए की उसकी माँ को देना और उसको अपने साथ ले आना।"

हम तीनों मोटर पर उसके यहाँ पहुँचे। थैली में पूरे पाँच हज़ार रुपए थे, जिसको चार हिस्सों में तक़सीम करके चन्दा का हिस्सा उसको दे दिया और उसको अपने साथ ले आए। वह दिन और आज का दिन; कि राजा साहब बग़ैर चन्दा के जी ही नहीं सकते! और चन्दा का यह हाल है, कि वह हम लोगों के मशविरे के बग़ैर एक क़दम भी नहीं उठाती! मकान उसने अपना ख़ुद बनवा लिया है और सर से पैर तक ज़ेवरों से लदी हुई है। रह गए हम लोग, तो हमारी क़िस्मत का जो हिस्सा है, वह, चन्दा ही के बहाने से सही, मिलता रहता है। और लुत्फ़ यह, कि ख़ुद राजा साहब को अब तक यक़ीन है, कि चन्दा उनपर बुरी तरह मरती है!

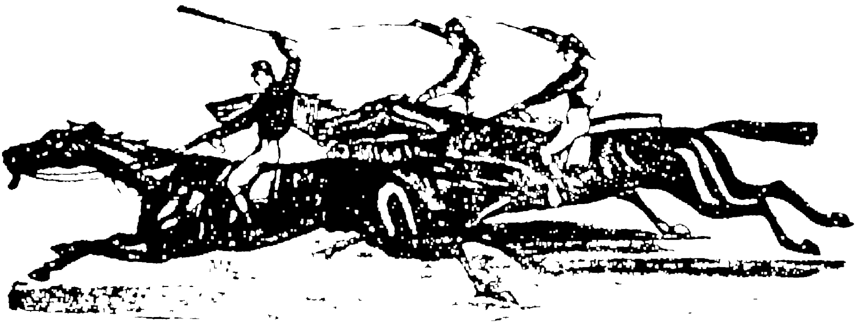

राजा साहब की तलवार

राजा साहब को कोई बुरा कहे या भला, लेकिन इसमें शक नहीं कि अगर परमात्मा ऐसे अक़्ल के दुश्मन धनवान पैदा न करता, तो हम ऐसे ग़रीबों का भला क्योंकर होता? यह तो उस ईश्वर की लीला है, कि उसने जिसको रुपया दिया है, उसको अक़्ल नहीं दी और जिस को अक़्ल दी है, उसको रुपया, इसलिए नहीं दिया, कि अगर अक़्ल है, तो वह ख़ुद रुपया कमाएगा। राजा साहब के पास रुपया था, और हमारे पास अक़्ल! इस हिसाब से राजा साहब गोया हमारे बैंक थे। बस हम को मेहनत इतनी ही करनी पड़ती थी, कि जब रुपया लेना हो, कोई

चलती हुई तरकीब सोचें और राजा साहब से रुपया उगलवा लें। अभी कुछ दिनों की बात है कि मिरज़ा साहब के मकान की तरफ़ जा रहे थे। रास्ते में एक कबाड़ी की दूकान पर ज़ंग लगी हुई पुराने ज़माने की एक तलवार जो देखी, तो एकदम दिमाग़ में राजा साहब का ख़्याल आ गया। इस ख़्याल का आना था, कि पूरी स्कीम, वहीं, रास्ता चलते, बना ली और कबाड़ी से मोल-तोल करके दस आने में वह तलवार ले ली। अब जो पहुँचे मिरज़ा साहब के यहाँ, तो वह हाथ में यह सड़ी हुई तलवार देख कर हैरान, कि आख़िर माजरा क्या है! कहने लगे—

"यह आज किसकी शामत आई है? आख़िर यह तलवार कहाँ से लाए?"

हमने कहा—"राजा पोरस की तलवार है! बड़ी मुश्किल से हाथ लगी है।"

मिरज़ा साहब ने तआज्जुब से पूछा—"राजा पोरस की तलवार! यह आख़िर बक क्या रहे हो?"

हमने कहा—"बिलकुल ठीक कह रहा हूँ। यह राजा पोरस की तलवार बनाई जायगी।"

मिरज़ा साहब ने कहा—"न जाने, क्या कह रहे हो। राजा पोरस की तलवार है। राजा पोरस की तलवार बनाई जायगी। आख़िर तुम्हारा-मतलब क्या है?"

हमने हँस कर कहा—"भाई मिरज़ा साहब! तुम तो ऐसे भोले हो नहीं, कि अब तक न समझो। ख़ुद तुम्हींने कल कहा था, कि कुछ

रुपए की ज़रूरत है, और मुझे तो रुपए बग़ैर किसी ज़रूरत के चाहिए; इसलिए यह राजा पोरस की तलवार बनाई जायगी। अब समझे ?"

मिरज़ा साहब ने हँसकर कहा—"अच्छा, अब समझा। मगर यह राजा पोरस की तलवार क्योंकर बनाई जायगी और अगर बन भी गई, तो राजा साहब आख़िर इसको ख़रीदेंगे क्यों ?"

हमने कहा—"इसका ज़िम्मा मेरा ! बस तुम मेरी हाँ में हाँ मिलाते रहना और इस मामले में किसी और को शरीक, न करना इसलिए, कि रुपए की बस मुझको और तुमको ज़रूरत है।"

मिरज़ा साहब ने बेपरवाही से कहा—"देखो, जो रुपए मिल जाँय। मुझ को ज़रा उम्मीद कम है।"

हमने अकड़ कर कहा—"यह क्या कह रहे हो मिरज़ा ! आज तक कभी हमारा कोई दाँव ख़ाली गया है ? बस, तुम मेरे ऊपर सारा क़िस्सा छोड़ दो और चलो मेरे साथ।"

हम दोनों ने मिल कर इस तलवार के लिए एक उम्दा-सी मियान बनवाई। इसको एक मख़मल के बक्स में रक्खा और इस मख़मल के बक्स को कपड़े में लपेट कर पहुँचे राजा साहब के यहाँ। राजा साहब इस वक़्त अपना सिर मुड़वाने के बाद तेल दबवा रहे थे। हम लोगों को देख कर बोले—"ख़ूब आए ! मेरे दिल में यह ख़्याल ही आया था, कि किसी को भेजूँ कि तुम लोगों की ख़बर तो लाए। आख़िर आज सवेरे से कहाँ ग़ायब थे ?"

हमने कहा—"क्या बताऊँ, हुज़ूर। सवेरे से क्या, यह कहिए, सारी रात और सवेरे से यह व़क्त आ गया, कि हम दोनों हुज़ूर ही के काम

में लगे हुए थे। मगर यह सरकार का इक़बाल है, कि कमयाबी हमारी ही रही।"

राजा साहब ने नौकर को जाने को इशारा कर के कहा—"क्या काम बनाया ? ज़रा मुझे भी तो बताओ।"

हमने कहा—"सरकार तो जानते ही हैं, कि नवाब साहब अलीनगर बस यह चाहते हैं, कि उन्हीं को इस ज़माने का रईस समझा जाय, और बाक़ी रईस तो जैसे उनके .गुलाम ही हैं !"

राजा साहब ने घबरा कर कहा—"क्या ? बात क्या हुई आख़िर ?"

हमने कहा—"सरकार, आजकल एक सव्वाह यहाँ आया हुआ है। उसके पास दुनिया की अजीब-अजीब चीज़ें हैं—राजा टोडरमल के हाथ का लिखा हुआ खाता, सिकन्दर-आज़म की टोपी, तुलसीदास के गले की माला, और जाने क्या-क्या ! मगर इसमें शक नहीं, कि ये सब चीज़ें इस क़ाबिल हैं कि इनको रजवाड़े अपने पास रक्खें। बड़े-बड़े अङ्गरेज़ इन्हीं चीज़ों को देखने आएँगे और जिसके पास ये चीज़ें होंगी, उसके .गुलाम बने रहेंगे।"

राजा साहब ने कहा—"यह तो तुम ठीक कहते हो। अब देख लो ना, कि राजा साहब भवानीपुर के पास सभी बड़े-बड़े हाकिम जाते हैं कि उनका कुतुबख़ाना देखें।"

मिरज़ा जी ने कहा—"इसीलिए वह ख़िताब पा गए। नहीं तो उनको पूछता ही कौन था !"

हमने कहा—"जी हाँ, यही बात नवाब साहब अलीनगर को भी सूझी है। आपने उस सब्बाह को बुला कर सभी चीज़ों के दाम लगा दिए। और चीज़ें तो ख़ैर यों ही सी थीं, मगर उसके पास राजा पोरस की वह तलवार थी, जिसको लन्दन के अजायबख़ाना ने ख़रीदना चाहा था; मगर दाम पूरे न मिले, इसलिए उसने न बेची। नवाब साहब अलीनगर ने उस तलवार के लिए थैलियों के मुँह खोल दिए। इधर मुझे जो ख़बर हुई, तो मैंने उस सब्बाह से कह दिया कि मियाँ, दाम पहिले ले लेना, नहीं तो ये चीज़ें भी हाथ से जायँगी और दाम भी न मिलेंगे।"

राजा साहब ने हँसकर कहा—"भई, क्या दाँव खेला है! अच्छा, फिर क्या हुआ?"

मिरज़ा जी ने कहा—"सरकार, बड़ी मुसीबत से इसको नवाब साहब की तरफ़ से खींचा है।"

हमने कहा—"और चाहे नवाब साहब सब चीज़ें ले जाते, मगर यह तलवार तो बस हुज़ूर ही के क़ाबिल थी। जिस वक़्त यह सरकार के कमरे में लगेगी और बड़े-बड़े हाकिम इसको आ कर देखेंगे, तो बस देखते ही रह जाएँगे।"

राजा साहब ने कहा—"अरे भई, तो ख़रीद भी ली तलवार, या यों ही अभी तक टाल रहे हो!"

हमने कहा—"अब ख़रीदना और न ख़रीदना तो हुज़ूर का काम है। मैंने तलवार अपने क़ब्ज़े में ज़रूर कर ली है, नहीं तो हाथ से

निकल जाती। ऐसी चीज़ों के ग्राहक रुकते नहीं हैं। नवाब साहब अलीनगर ने इसके दाम एक हज़ार लगा दिए थे।"

राजा साहब ने कहा—"एक हज़ार ! बड़ी महँगी है।"

हमने कहा—"महँगी ? सरकार एक हज़ार में तो मुफ़्त समझिए। मगर ख़ैर, मैंने उसको यह पट्टी पढ़ाई कि मियाँ, एक हज़ार क्या, नवाब साहब तो दस हज़ार को ख़रीद लेंगे, इसलिए, कि उनको दाम देना थोड़े ही है। अलबत्ता अगर नक़द रुपए लेना है, तो हम ग़रीबों से सौदा करो और हमारे पास आठ सौ रुपए हैं। कहो तो गिन दें।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा, फिर ? अरे भई, उसके सामने रुपया रख दिया होता। रुपए का बड़ा असर पड़ता है। रुपया देख कर वह पानी हो जाता।"

मिरज़ा जी ने कहा—"सरकार, रूपया भला हमारे पास कहाँ ! मगर ये भी बड़े ही हज़रत हैं। जल्दी से उसको आठ सौ रुपए का चेक लिख कर दे दिया। बैङ्क में कानी-कौड़ी नहीं, और जेब में चेक-बुक रखते हैं !

राजा साहब ने क़हक़हा लगाकर कहा—"बड़े बने हुए हो। तो ले ली तलवार ?"

हमने कहा—"तलवार ही नहीं ले ली, बल्कि उसको नवाब साहब अलीनगर की तरफ़ से ऐसा भड़काया कि वह आठ सौ का चेक लेकर शहर ही से चला गया।"

राजा साहब ने हाथ बढ़ा कर कहा—"ज़रा मैं भी देखूँ तलवार।"

हमने तलवार का बक्स उठाते हुए कहा—"लीजिए, देखिए—अब

यह आप ही की चीज़ है। ऐसी चीज़ें हर एक को थोड़े ही मिला करती हैं !"

राजा साहब ने तलवार निकाल कर देखते हुए कहा—"क्या लोहा होता था उस ज़माने का, और क्या बनावट होती थी ! जैसे पूरी तलवार साँचे में ढाल कर रक्खी हो !"

हमने कहा—" हुज़ूर, इस तलवार का ज़िक्र किताबों में इस तरह आया है, कि जब राजा पोरस के हाथियों ने अपनी ही फ़ौज को कुचलना शुरू किया, तो इसी तलवार से राजा ने साठ हाथियों की सूँड़ें काटी थीं और सिकन्दर ने इस तलवार को लेकर अपने सिर पर रक्खा था।"

मिरज़ा जी ने कहा—"देखिए, कहाँ-कहाँ होती हुई यह चीज़ आज हुज़ूर तक पहुँची है !"

हमने कहा—"मगर एक बात है कि वह कम्बख़्त अगर चेक लेकर बैंक गया, तो बड़ी बुरी बात होगी। बैंक में रुपया फ़ौरन् जमा कर देना चाहिए।"

राजा साहब ने कहा—"नहीं, रुपया मैं अभी देता हूँ। पहले जा कर जमा कर दो। नहीं तो हमेशा के लिए बात ख़राब हो जायगी।"

राजा साहब यह कह कर अन्दर के कमरे में गए और हमने मिरज़ा जी को झुक कर सलाम किया। वह हँस रहे थे। हमने चुपके से कहा—"कहो मिरज़ा ! दस आने के आठ सौ बने ! क्या व्यापार रहा !"

मिरज़ा जी ने चुपके से कहा—"चुप रहो। वह आ रहे हैं।"

राजा साहब ने आकर आठ सौ के नोट गिन दिए और हमने मिरज़ा साहब को तलवार के लिए मशविरा देना शुरू किया।" देखो मिरज़ा, इसको बड़े कमरे में लगा दो, और उसके नीचे एक तख़्ती होनी चाहिए, जिसपर लिखा हो कि यह राजा पोरस की तलवार है।"

राजा साहब ने कहा—"पहले जाकर रुपए जमा कर दो, फिर देखा जयगा। मैं जब तक ज़रा मिरज़ा से एक बाज़ी शतरञ्ज की खेल लूँ।"

हम रुपए लेकर रवाना हो गए, और मिरज़ा राजा साहब से शतरञ्ज खेलने लगे। मगर उनका दिल रुपए में लगा हुआ था !!

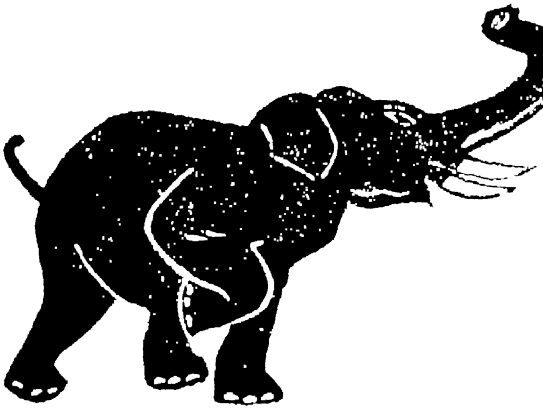

राजा साहब का सफ़र

पहले दिन बिल्ली रास्ता काट गई, दूसरे दिन किसी को छींक आ गई, तीसरे दिन चौसर की बाज़ी देर में ख़त्म हुई और चौथे दिन राजा साहब ने कहा कि आज मुझे खाना हज़म नहीं हुआ है। मतलब यह कि पाँच दिन से स्टेशन पर राजा साहब का सामान पड़ा हुआ था और हर गाड़ी पर उनका इन्तज़ार होता था, मगर राजा साहब न आज जाते थे न कल, एक-न-एक बात निकल ही आती थी और किसी-न-किसी तरह सफ़र टलता ही जाता था। सफ़र [illegible] दिन का नहीं, बस कानपुर तक; मगर तैयारियाँ ऐसी थीं कि जैसे विलायत ही तो जा रहे हैं। पचासों ट्रङ्क थे, उतने ही बिस्तर, पूरा बावर्चीख़ाना, डॉक्टर साहब और उनके साथ छोटी-सी डिस्पेन्सरी। मोटर पहले ही जा चुकी थी, मगर मोटर का सामान राजा साहब के साथ ही था; तबला, हारमोनियम, सितार, ताश की गड्डियाँ, शतरंज, चौसर और नहीं मालूम क्या क्या अल्लम-ग़ल्लम, छकड़ा-टमटम। मालूम होता था, कि एक पूरे मुहल्ले का सामान है। हर ट्रेन पर राजा साहब के लिए फ़र्स्ट क्लास रिज़र्व किया जाता था और वह ख़ाली लखनऊ से कानपुर तक चला जाता

था। रेलवे कम्पनी का भला हो रहा था और हमारा कोई नुक़सान न था, इसलिये कि रुपया राजा साहब का था, और ख़ुद राजा साहब को रुपये के मुतल्लिक़ यह भी नहीं मालूम होता था, कि सोलह आना, यानी चौंसठ पैसों का होता है और उसका एक-एक पैसा किसान अपना खून-पानी एक करके पैदा करते हैं !!

पाँचवें दिन राजा साहब बिल्कुल तैयार थे। हमको स्टेशन पर टेलीफ़ोन से ख़बर मिली कि बस अब चलने ही वाले हैं। मोटर लगी हुई है और राजा साहब इत्र लगा रहे हैं। हमने जल्दी-जल्दी असबाब वेटिङ्ग-रूम से निकलवा कर प्लेटफ़ॉर्म पर रखवाया और अब यह इरादा था कि फ़र्स्ट-क्लास रिज़र्व करा लें और टिकट ख़रीद लें। मगर फ़ौरन् ही ख्याल आया कि राजा साहब का क्या ठीक है, मालूम नहीं आज भी जा सकेंगे या नहीं। आख़िर टिकट के दाम रेलवे को क्यों दिए जायँ, ख़ुद हम भी तो बाल-बच्चे वाले आदमी हैं। राजा साहब के रुपयों का हक़ रेलवे से ज़्यादा हमको पहुँचता है। अगर राजा साहब आ ही गए, तो फ़ौरन् टिकट ले लिए जायँगे और अगर न आए, तो सौ डेढ़ सौ रुपया हमारे बाल-बच्चों के काम आयगा। हम इसी ख्याल में प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँच गए थे कि राजा के चोबदार ने आकर ख़बर दी कि राजा साहब आ गए हैं, मगर आपको मोटर पर बुला रहे हैं, कुछ कहना है। हम फ़ौरन् स्टेशन के बाहर आए और राजा साहब को सलाम किया। राजा साहब ने हमको देखते ही कहा—"अरे भाई सेक्रेटरी साहब, आज भी आना नहीं हो सकता।"

हमने कहा—"मगर हुज़ूर मैं तो टिकट भी ले चुका और फ़र्स्ट क्लास रिज़र्व भी करा लिया है, पाँच दिन से बराबर यही हो रहा है।"

राजा साहब ने इसको मामूली बात समझ कर कहा—"यह तो ठीक है, मगर तुम ही बताओ कैसे जायँ ? एकदम ऐसा नज़ला हुआ है कि रेल की हवा लगी तो और मुसीबत आ जायगी।"

हमने राजा साहब का मुँह देखकर कहा—"जी हाँ, आँखें तो लाल हो रही हैं।"

एक मुसाहब ने कहा—"आँखें क्या लाल हो रही हैं, मारे छींकों के बुरा हाल है।"

हमने कहा—"तो फिर सामान लेकर मैं कोठी पर आ जाऊँ।"

राजा साहब ने कहा—"सामान क्या करोगे लाकर, आख़िर जाना तो है ही, आज न सही कल सही। अगर तुम ख़ुद आना चाहो तो आ जाओ, यहाँ तो और लोग सामान देखने के लिए मौजूद ही हैं।"

हम राजा साहब के साथ ही कोठी पर चले गए। राजा साहब तो महल के अन्दर चले गए और बाहर हम लोग हिसाब-किताब में लग गए, इसलिए कि इसी वक़्त बटवारा होने वाला था। राजा साहब को तो यह बताया गया था कि रोज़ टिकट ख़रीदे जा रहे हैं और बेकार जा रहे हैं, मगर यहाँ यह 'स्कीम' थी कि रोज़ टिकट ख़रीदे और फिर वापस कर दिए। यहाँ राजा साहब के सब मुसाहब मिलकर यही कोशिश करते थे कि किसी तरह सफ़र टल जाय, ताकि रुपया बचे। राजा साहब' बेचारे को यह भी मालूम न था, कि टिकट ख़रीदकर वापस भी हो सकते हैं और अगर उनको यह मालूम हो जाता, तो

शायद कभी सफ़र हो ही न सकता था। बहरहाल हिसाब-किताब के बाद मालूम हुआ कि सौ-सौ रुपया से कुछ ज़्यादा ही हम लोगों के हिस्से में अब तक आ चुका था। हमने कहा—"मगर यार, तुम लोगों ने राजा को रोका ख़ूब।"

मीर साहब ने कहा—भई पहले दिन तो मैंने बिल्ली लाकर ठीक उस वक़्त छोड़ी, जब राजा साहब मोटर पर बैठ रहे थे।"

एक मुसाहब ने कहा—"और दूसरे दिन मैं छींका कैसे था।"

मीर साहब ने कहा—"क्या कहना है, बिल्कुल मालूम होता था, जैसे असली छींक है।"

रज्जन साहब ने कहा—"अपनी-अपनी कहोगे, और मैंने जो चौसर की बाज़ी को लटकाया है, तो रेल के सब वक़्त ख़त्म करा दिए।"

मीर साहब ने कहा—"हाँ भाई, तुमने तो कमाल ही कर दिया था, मगर यार मैंने राजा साहब के रुमाल पर आज, जिस सफ़ाई के साथ नास छिड़की है और उनको छींकों में मुब्तिला किया है, उसका ज़िक्र ही न करोगे।"

हमने कहा—"तो यों कहिए, आप लोगों ने बड़े-बड़े कमाल दिखाए, मगर यार अब कल तो चलना ही चाहिए, आख़िर कानपुर में भी तो कुछ न कुछ करना ही है।"

मीर साहब ने कहा—"हाँ, कल चलो, अब जो क़िस्मत में मिलना है, वह कानपुर में भी मिल सकता है।"

हमने कहा—"हाँ जी, ख़ुदा हमारे राजा को सलामत रक्खे, इस

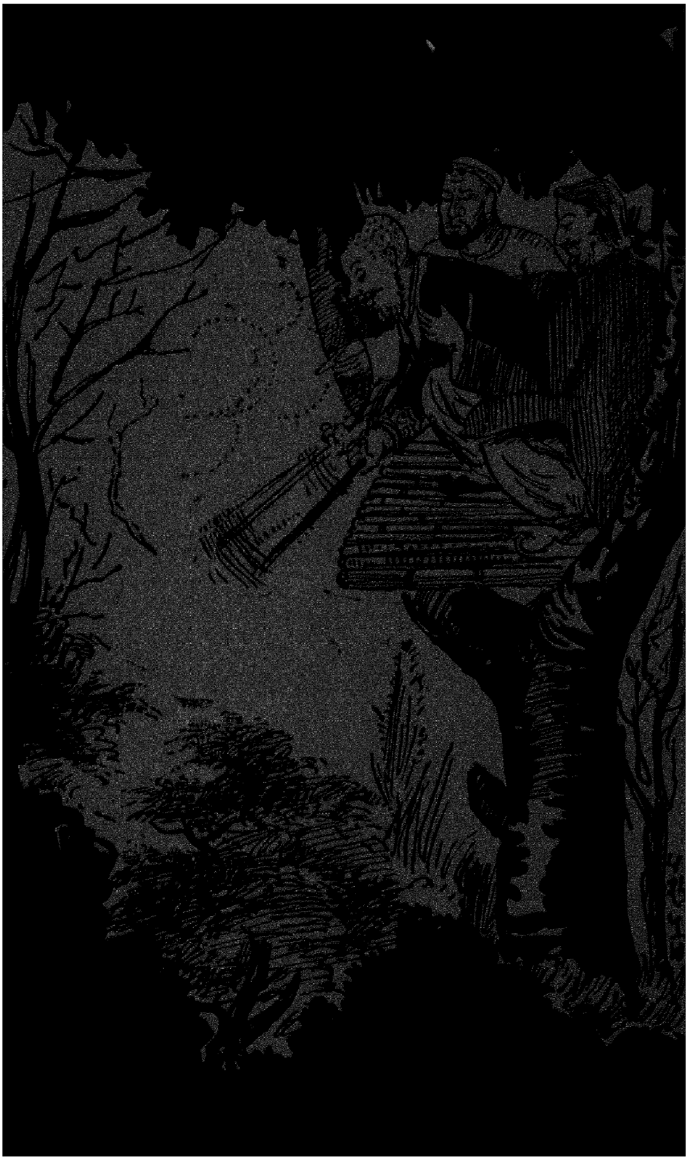

राजा साहब की राईफ़ल भी उनके हाथ में दे दी गई, मगर इस तरह काँप रहे थे, कि राईफ़ल हाथ से छुटी पड़ती थी ! पृष्ठ—७०

बेचारे को तो लखनऊ क्या, और कानपुर क्या, हर जगह बनाया जा सकता है।"

इतने में राजा साहब आ गए और अपना नाम सुनकर बोले—"क्या बात है, मेरा क्या ज़िक्र था।"

हमने कहा—"कुछ नहीं हुज़ूर, ये मीर साहब कह रहे थे कि.............।"

मीर साहब ने बात काट कर कहा—"देखिए सेक्रेटरी साहब, मैंने इसलिए नहीं कहा था, कि आप राजा साहब से कह दें।"

राजा साहब ने कहा—"तुम्हें मेरी क़सम, बताओ तो सही, आख़िर बात क्या थी?"

हमने कहा—"हुज़ूर, यह मना करते हैं, मगर मैं आपके क़सम दिलाने पर मजबूर हूँ। बात यह थी, कि मीर-साहब ने कहा कि कानपुर से 'अलस्टर' का कपड़ा लाएँगे, फिर ख़ुद ही कहने लगे आजकल दाम नहीं हैं। तो मैंने कहा, राजा साहब के साथ जा रहे हो और फिर यह फ़िक्र..............।"

मीर साहब ने कहा—"और अपनी तो कहो। तुमने भी तो कहा था कि जाड़े का एक सूट भी ऐसा नहीं है, कि राजा साहब के साथ पहन कर कहीं जायँ, तो मैंने कहा कि जब राजा साहब तुम्हारे पुराने 'सूट' देखेंगे, तो ख़ुद ही उनको ख़याल होगा।"

हमने कहा—"और ये रज्जन मियाँ ऐसे चुप हैं, जैसे इन्होंने तो कुछ कहा ही नहीं।"

राजा साहब ने हँसकर कहा—"हाँ, बताओ इन्होंने क्या कहा?"

रज्जन साहब ने कहा—"देखिए सिक्रेटरी साहब, मैं हाथ जोड़ता हूँ, मेरी बात न बताइएगा, अगर राजा साहब से आपने यह कह दिया, कि उनका चेस्टर रज्जन को पसन्द है, तो वे सिर मुँड़ा देंगे, इसलिये आप चुप ही रहिए।"

एक और मुसाहब ने कहा—"भाई, अब मैं तो यहाँ से खिसका, नहीं तो मेरा भण्डा भी फूट जायगा।"

राजा साहब ने कहा—"ख़बरदार जो गए, बताओ इन हज़रत ने क्या कहा था?"

मुसाहब ने कहा—"हज़ूर, मैं ख़ुद बताए देता हूँ कि मैंने यही कहा था कि जब सबके कपड़े बनेंगे तो मैं क्या नङ्गा फिरूँगा?"

राजा साहब ने बड़े ज़ोर से क़हक़हा मारा, और देर तक हँसने के बाद बोले—"तुम सबकी चोरी पकड़ी गई?।"

हमने कहा—"आपसे भला कोई बात छिप सकती है?"

मीर साहब ने कहा—"ख़ास तौर से जो बात छिपाई जाय; वह तो कभी छिप ही नहीं सकती।"

राजा साहब ने कहा—"मैं तो तुम लोगों का चेहरा देखकर दिल का हाल बता सकता हूँ, तुम बेकार अपनी बातें छिपाते हो।"

हमने मुँह लटकाकर कहा—"क्या बताएँ साहब, अब तो बात करना भी मुश्किल हो गया है।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा तो मीर साहब के लिये 'अलस्टर' का कपड़ा आयगा। तुम्हारे लिये सूट, रज्जन को वाक़ई मेरा 'चेस्टर' बहुत पसन्द है। उस दिन मैंने देखा था कि आप 'चेस्टर' पहन कर आइना के

सामने खड़े हुए, अपने को देख-देखकर खुश हो रहे थे। उनको वही 'चेस्टर' दे दिया जाय। यह जो नङ्गे फिरेंगे, तो इनके लिये भी 'अलस्टर' का ही कपड़ा आयगा, क्यों ठीक है न ?"

मीर साहब ने कहा—"अरे, अब ठीक और ग़लत का क्या सवाल है। अब तो आपने सुन ही लिया है। हम लाख इनकार करें, मगर अब क्या होता है ?"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा, खैर अब लाओ ज़रा एक बाज़ी चौसर की हो जाय। कल से यह रज्जन अकड़ रहा है। मुझे तो आज इसका खेल देखना है। राजा साहब चौसर पर बैठ गए और हम थोड़ी देर खेल देखने के बाद वहाँ से खिसक आए, ताकि ज़रा आराम कर लें, और अपने कमरे में आकर सो गए। शाम को जब राजा साहब ने सिनेमा जाने के लिये बुलवाया, तो हमारी आँख खुली और राजा साहब के साथ खाना खाकर सिनेमा गए। सिनेमा से वापसी पर हम तो स्टेशन चले आए, इसलिये, कि राजा साहब का सब सामान वहीं था और राजा साहब यह वायदा करके कोठी की तरफ़ रवाना हो गए, कि सुबह को ज़रूर चलेंगे।

दूसरे दिन राजा साहब अपने सब मुसाहबों के साथ वक़्त पर स्टेशन आ गए और हमने सबके लिये, 'फ़र्स्ट' क्लास के टिकट ले लिए। राजा साहब को मिलाकर पाँच आदमी थे, मगर दस आदमियों का किराया हिसाब में लिखा गया और राजा साहब को समझा दिया गया कि बग़ैर दस आदमियों के किराये के फ़र्स्ट क्लास रिज़र्व नहीं हो सकता! एक रुपया कुलियों को दे कर खुश कर दिया और दस रुपया हिसाब में

लिख दिया। वेटिङ्ग रूम के ब्वॉय ने सलाम किया। उसको भी एक रुपया देकर, पाँच रुपए हिसाब में लिख दिए। हालाँकि राजा साहब कहते ही रहे कि दस रुपया दे दो। मगर हमने राजा साहब को यह कहकर चुप कर दिया, कि हुज़ूर अगर इस तरह रुपया लुटाया गया, तो कानपुर तक के लिये दस हज़ार रूपया भी काफ़ी नहीं हो सकता।

थोड़ी ही देर में गाड़ी छूटी और गाड़ी के छूटते ही हमने अन्ट-सन्ट जो मुँह में आया, चुपके-चुपके बुदबुदा कर राजा साहब पर फूँक दिया। फिर इधर-उधर की बातें होती रहीं कि इतने में गाड़ी अमौसी के स्टेशन पर ठहरी और हम लपक कर नीचे उतरे। एक तरकीब दिमाग़ में आ चुकी थी और हम बेक़रार थे, कि किसी तरह कोई टिकट-कलक्टर मिल जाय, तो कम-से-कम सौ रूपए का एक दाँव चल सकता है। मगर अमौसी में गाड़ी बहुत कम ठहरती है और यही हाल हरौनी का भी है। मगर अजगैन के स्टेशन पर हमको मौक़ा मिल गया और टिकट-कलक्टर भी अपनी जान-पहचान का था। उसको एक दस का नोट थमाकर राज़ी कर लिया और अपने साथ राजा साहब तक ले आए।

राजा साहब टिकट-कलक्टर को देखते ही कुछ सहम-से गए और हमको परेशान देखकर तो और भी गड़बड़ाए।

मीर साहब ने हमको देखकर आँख मारी और हमने टिकट-कलक्टर से कहा—"देखिए राजा साहब बैठे हैं, आपको जो कुछ कहना है, अब यहाँ कहिए।"

टिकट-कलक्टर ने कहा—"इसमें कहना ही क्या, आपने टिकट गलत ले लिया है। इसमें एक ज़नाने दर्जे का टिकट है।"

राजा साहब ने कहा—"क्या कहा, ज़नाने दर्जे का टिकट ?"

टिकट-कलक्टर ने कहा—"जी हाँ, यह चार मरदाने दर्जे के टिकट हैं, ये ठीक हैं, और एक ज़नाने दर्जे का टिकट है।"

राजा साहब ने कहा—"मगर फ़र्स्ट क्लास का तो है।"

टिकट-कलक्टर ने कहा—"फ़र्स्ट क्लास का तो है, मगर शायद आप समझे नहीं, इसमें एक ज़नाना फ़र्स्ट-क्लास का है।"

राजा साहब ने कहा—"तो फिर अब क्या हो; मगर यह तो टिकट देने वाले की ग़लती है कि उसने मर्द को औरत का टिकट दे दिया। भला हमको ज़नाना दर्जे से क्या मतलब ?"

हमने कहा—"हुज़ूर, हुआ यह, कि जब मैं टिकट ले रहा था, तो वहाँ एक औरत भी खड़ी थी। टिकट देने वाला समझा होगा कि वह भी साथ में है, इसलिये एक औरत का टिकट भी दे दिया।"

टिकट-कलक्टर ने कहा—"जी हाँ। अभी ज़नाना फ़र्स्ट-क्लास में एक औरत को मैंने पकड़ा है, उसके पास मरदाना-फ़र्स्ट-क्लास का टिकट था। मालूम होता है कि टिकट बदल गए।"

राजा साहब ने कहा—"तो भाई, टिकट बदल दो न।"

टिकट-कलक्टर ने हँसकर कहा—"यह कैसे हो सकता है ? टिकटों पर तो नम्बर पड़े होते हैं न।"

मीर साहब ने कहा—"हाँ, यही बड़ी मुसीबत है।"

रज्जन ने कहा—"अमाँ, तो दूसरा टिकट बनवा लो।"

टिकट-कलक्टर ने कहा—"नहीं साहब, यह तो बड़ा जुर्म है। उस औरत ने अभी सौ रूपया जुरमाने के दिए हैं।"

राजा साहब ने हमसे कहा—"जाइए आप भी हिसाब कर दीजिए; इसमें आख़िर हो ही क्या सकता है ?"

गाड़ी छूटने से पहले सौ रूपये का यह सौदा हो चुका था और अब गाड़ी अजगैन और उन्नाव के बीच में थी, कि हिरनों का एक ग़ोल देख कर राजा साहब ने कहा—"अमाँ, देखो तो शिकार !"

रज्जन ने कहा—"हुज़ूर, यहाँ तो बहुत शिकार हैं। परिन्द भी बहुत हैं और हिरन तो कुछ पूछिए ही नहीं।"

राजा साहब ने कहा—"अमाँ. तो अब क्या हो यार, यह शिकार तो ज़रूर मिलना चाहिए।"

मीर साहब ने कहा—"चलिए भी, बेकार गाड़ी रुकवाई जायगी, तो डेढ़ सौ रूपया देना पड़ेगा।"

रज्जन ने कहा—हाँ, यह तो है, मगर शिकार बहुत है। ऐसा शिकार आपके सूबे में और कहीं नहीं।"

राजा साहब ने कहा—"यार, दे डेढ़ सौ।"

हमने लपककर ज़ञ्जीर खींच ली और गाड़ी थोड़ी ही देर में ठहर गई। मगर इससे पहले, कि गार्ड वग़ैरः आवें, हमने ख़ुद ही कहा—"गाड़ी तो रुक गई, मगर यह बतलाइए कि इस जङ्गल में इतना सामान लेकर उतरना भी ठीक नहीं है !

मीर साहब ने कहा—"मैं तो पहले ही मना कर रहा था। अभी दस-बारह दिन हुए, यहाँ डाका भी पड़ चुका है और क़त्ल भी हुआ था !"

राजा साहब ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"तो बाबा, मैंने शिकार से कान पकड़े, गाड़ी रुकवाने के डेढ़ सौ देकर चुपके चले चलो।"

ज़ंजीर खींचने के पचास रुपये देने के बाद भी सौ रुपये हम लोगों के लिये बचे और दो सौ रुपये की इस कमाई के बाद हम लोग राजा साहब को लेकर ख़ैरियत से कानपुर पहुँच ही गए !!

राजा साहब की लीडरी

मालूम नहीं, राजा साहब के कान में शैतान यह किस वक़्त फूँक गया, कि आप लीडर भी बन सकते हैं, हालाँकि ग़रीब राजा साहब को यह भी नहीं मालूम था कि लीडर के कितनी बड़ी सूँड़ होती है और लीडर आटा खाता है, या गोली ! मगर लोगों ने उन्हें समझा दिया कि आप लीडर हैं, अतः वह लीडर बनकर बैठ रहे और शामत आई हमारी, कि अब बनाएँ उनको लीडर और करें उनकी तरफ़ से लीडरी ! ख़ैर, यहाँ तक तो सहल था कि हम राजा साहब की ओर से लीडरी करते रहें, पर मुसीबत तो यह थी, कि ख़ुद राजा साहब भी बात-बात में अपनी टाँग

भड़ाते रहते थे और हमें हर वक्त यही डर मालूम होता था कि कहीं हमारे सरकार की लीडरी का भण्डा न फूट जाय! उनकी ओर से समाचार-पत्रों को वक्तव्य हम देते थे, जो उनके चित्रों के साथ छपते थे और वह देख-देखकर प्रसन्न होते थे। उनकी ओर से समाचार-पत्रों में लेख हम लिखते थे, और ख्याति उनकी होती थी। उनकी ओर से प्रेज़िडेंशल ऐड्रेस और ऐड्रेसों के जवाब हम लिखते थे! बल्कि इस विचार से, कि कहीं राजा साहब पढ़ते-पढ़ते अटक न जायँ या हकलाना न आरम्भ कर दें, हम ही यह कहकर उनको पढ़ भी दिया करते थे, कि राजा साहब को कड़ा ज़ुकाम हो गया है, जिसके कारण वह पढ़ने में असमर्थ हैं या राजा साहब अपनी ऐनक भूल आए हैं, इसलिये मैं पढ़ रहा हूँ। किन्तु इतना सब होने पर भी राजा साहब स्वयं अपनी योग्यता दिखाए बिना न रहते थे और हर अवसर पर कोई-न-कोई बात ऐसी कर बैठते थे, कि बस हम अपना सर पीट लेते थे और हमारी सारी मेहनत पर पानी फिर जाता था!

अभी कल की बात है, कि हरिजनों के सम्बन्ध में हमने राजा साहब की ओर से एक लेख लिखा। उसे देखकर एक हरिजन-लीडर राजा साहब से मिलने आया। ख़ैर, यह तो राजा साहब ने अच्छा किया कि उनके आते ही हमको बुलवा भेजा और स्वयं कोई बातचीत न की, नहीं तो मालूम नहीं क्या बे-पर की उड़ाते! जब हम पहुँचे हैं, तो राजा साहब चुप बैठे हुए थे और वह हरिजन लीडर भी चुप था। हमारे पहुँचते ही राजा साहब ने कहा—"देखिए सेक्रेटरी साहब, आप तशरीफ़ लाए हैं।"

हम फ़ौरन् हरिजन लीडर की ओर उटेरने लगे। उनसे बातचीत करने के बाद मालूम हुआ कि वह हरिजनों के लीडर हैं और राजा साहब का लेख देखकर अपनी, और हरिजनों की ओर से, राजा साहब को धन्यवाद देने आए हैं। अतः हमने राजा साहब से कहा—"आप शहर के हरिजनों के लीडर हैं और हुज़ूर का लेख देखकर पधारे हैं, कि आपको धन्यवाद अर्पण करें।"

राजा साहब ने खीसें निकाल कर कहा—"इसमें धन्यवाद की कौन-सी बात है, लेख तो मैं लिखा ही करता हूँ। मगर कौन-सा लेख?"

हमने बात बनाने के लिए जल्दी से कहा—'वही लेख सरकार, जो आपने हरिजनों के सम्बन्ध में अभी दो दिन हुए समाचार-पत्रों में भेजा है।"

राजा साहब ने उसी तरह मुस्कुराते हुए कहा—"हाँ-हाँ, ज़रूर भेजा होगा! मगर, भाई मैं तो रोज़ दो-तीन लेख अखबारों को भेजा करता हूँ, कहाँ तक याद रक्खूँ।"

हरिजन लीडर ने कहा—"सच है, आपके समान कर्तव्यनिष्ठ पुरुष अपने राष्ट्रीय कामों को याद भी नहीं रख सकता।"

हम कुछ कहने ही वाले थे, कि राजा साहब ने कहा—"यह बात तो न कहो भैया। याद तो मेरी ऐसी अच्छी है, कि एक बार मैं बहुत छोटा था, यही कोई पन्द्रह-सोलह साल का हूँगा, कि भूकम्प आया था! वह भूकम्प मुझे ऐसा याद है, कि जैसे कल की बात हो! भैया वैसा

ज़लज़ला तो फिर मैंने देखा नहीं ! मुझे अच्छी तरह याद है, कि लोग घरों से निकल-दिकलकर खेतों में खड़े हो गए थे, और............ "

हमने राजा साहब की इस बकवास का सिलसिला ख़तम करने के लिए कहा—"बात यह है महाशय, हमारे राजा साहब ने वह लेख आपको या हरिजन-समुदाय को ख़ुश करने के लिए नहीं लिखा था, बल्कि राजा साहब की यह दिली ख्वाहिश है, कि हरिजन, अपना अधिकार ठीक माँग रहे हैं। यह सनातनी लोगों का अन्याय होगा, यदि उनके अधिकार उन्हें न दिए जायँ !"

राजा साहब ने फिर टाँग अड़ाई—"कौन हरिजन ? वही महाशय, जो उस दिन आए थे, और मुझसे जलसे का प्रेज़िडेण्ट होने के लिए हठ कर रहे थे । अब बताइए कि मैं कहाँ से समय निकालूँ । बीमार अलग हूँ, परसों से ऐसी तबीयत ख़राब है, कि दिन में दो-तीन बार छींकें आ जाती हैं ।"

हमने फिर जल्दी से कहा—"सरकार वह तो हरिहरनाथ जी थे और आप हरिजनों के लीडर हैं, और अछूतों का बड़ा साथ दे रहे हैं।"

राजा साहब ने बिना समझे-बूझे कहा—"अछूत ? भाई सुनो, मैं सब कुछ कर सकता हूँ, मगर यह जो आजकल अछूतों की खोपड़ी पर............"

हम फ़ौरन् समझ गए, कि राजा साहब क्या कहने वाले हैं, अतः हमने घबराकर बात काटी—"जी हाँ, यह जो अछूतों की खोपड़ियों पर सनातन-धर्मियों के लट्ठ बरस रहे हैं, इसको हमारे सरकार नहीं

देख सकते। आप अछूतों के बड़े तरफ़दार हैं और आपने बीड़ा उठा लिया है कि अछूतों का अधिकार उनको दिलवाने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।"

अछूत-लीडर ने कहा—"वह तो राजा साहब का लेख देखते ही मैं समझ गया था और मेरे समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति पर उस लेख का गहरा प्रभाव हुआ है। हमारी इच्छा है कि इस बार ऑल-इण्डिया अछूत कॉनफ्रेन्स की प्रधानता राजा साहब ही करें।"

राजा साहब ने कहा—"लो भाई, और सुनो........"

हमने फिर राजा साहब को चुप करने के लिए जल्दी की, कि मालूम नहीं वह क्या कह जायँ, और जल्दी से खुद बोलना आरम्भ कर दिया—"राजा साहब कॉनफ्रेन्स की प्रधानता बड़े हर्ष से करते, परन्तु आजकल आप बहुत सी झंझटों में फँसे हैं! इधर असेम्बली में टेनेन्सी बिल आ रहा है, फिर यह, कि आपकी तबीयत भी ठीक नहीं है! और आपकी कॉनफ्रेन्स है कब?"

अछूत-लीडर ने कहा—"बस, अगले महीने में है; और अब की बार इसका जलसा लखनऊ में ही हो रहा है। हम सिवाय राजा साहब के और किसी को प्रधान नहीं बना सकते। राजा साहब को सभापतित्व तो स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

राजा साहब ने कहा—"अगले महीने में तो मेरे यहाँ खुद जलसा होगा। मैंने अब की जलसे में दो-दो गाने वाले बुलवाए हैं, और........"

हमने दाँत पीसकर अपना गुस्सा पी लिया, और जल्दी से कहा—

"राजा साहब के यहाँ अगले महीने 'सगुन' होने वाला है। उसमें रियासत की प्रथा के अनुसार नाच-रङ्ग सभी कुछ होता है, राजा साहब को इसमें व्यस्त रहना पड़ेगा "

अछूत-लीडर ने कहा—"इसी लिए तो मैं हाज़िर हुआ हूँ, कि राजा साहब ख़ुद ही कॉनफ्रेन्स की तारीख़ें नियत कर दें, जिसमें राजा साहब का कोई प्रोग्राम इस कॉनफ्रेन्स के समय में न हो।"

राजा साहब ने कहा—"बड़ा मज़ा रहेगा, उन दिनों में रौशनी होगी, फिर नाच-रङ्ग, दावतें-जलसे। मेरे यहाँ सब बड़े-बड़े लोग उस समय आते हैं।"

हमने जल्दी से, पहले तो राजा साहब को चुप रहने का सङ्केत किया, और फिर हरिजन लीडर से कहा—"अच्छा तो फिर मैं आपको तारीख़ों की सूचना दे दूँगा!"

हरिजन-लीडर राजा साहब को धन्यवाद देकर चला गया। उसके बाद हमने राजा साहब को समझाया कि वह कहाँ-कहाँ बहके थे और कैसे अशुद्ध उत्तर दे रहे थे! इसके बाद राजा साहब को यह भी समझाया कि हरिजन कॉनफ्रेन्स का सभापतित्व करने के बाद वह एक बड़े समुदाय के लीडर हो जायँगे और सारे हिन्दुस्तान में उनकी धूम मच जायगी; परन्तु राजा साहब ने सब कुछ समझने के बाद ना-समझी के साथ कहा—"तो अब तुम लोग यह चाहते हो कि भङ्गियों, चमारों और मेहतरों का लीडर बनकर रह जाऊँ।"

हमने फिर राजा साहब की औंधी खोपड़ी में यह बात ठूँसने का प्रयत्न किया, कि अब अछूतों को अछूत समझने का समय नहीं है, और

एक लीडर के लिये यह आवश्यक है, कि वह मन मे चाहे अछूतों से कितनी ही घृणा क्यों न करता हो, मगर ज़बान से उनको अपना 'भाई' कहे और अपने बराबर का समझे। राजा साहब की समझ में बड़ी मुश्किल से यह बात आई। परन्तु जब हमने यह कहा, कि अब की इलेक्शन में इन्हीं अछूतों के वोटों से आप असेम्बली में जा सकेंगे, और क्या आश्चर्य है, कि मिनिस्टर भी बना दिए जायँ, तो राजा साहब ने गड़बड़ाकर एकदम से कहा—"क्या-क्या, मिनिस्टर ?"

हमने कहा—"जी हाँ, मिनिस्टर।"

राजा साहब ने फिर आँखें फाड़ कर और मुँह खोल कर कहा—"मिनिस्टर, वही न, जो हमारे नवाब साहब हैं ?"

हमने कहा—"जी हाँ, वैसे ही मिनिस्टर।"

राजा साहब ने कहा—"तो भैया, मैं अछूतों का लीडर क्या, खुद अछूत बनने को तैयार हूँ। मेरे यहाँ सगुन हो या न हो, मगर उनकी कॉन्फ्रेन्स की सिदारत ज़रूर करूँगा। तुम उनको आज ही तारीख़ लिख दो और मेरा लेक्चर ऐसा तैयार करो, कि बस मुझको फ़ौरन् मिस्टिरन बना दिया जाय।"

हमने उसी दिन अछूत-कॉन्फ्रेन्स की तारीखें लिखकर भेज दीं और राजा साहब का प्रेज़िडेंशल ऐड्रेस पूर्ण परिश्रम के साथ तैयार करना आरम्भ कर दिया। उधर राजा साहब को दिन-रात अपने मिनिस्टर बनने की धुन थी। सोते में मिनिस्टरी के स्वप्न देखते थे और जागते में मिनिस्टरी की चर्चा होती थी ! अन्ततः कॉन्फ्रेन्स की तारीखें आ गईं और हमने राजा साहब का भाषण अङ्गरेज़ी, हिन्दी और उर्दू,

तीनों भाषाओं में बहुत सुन्दर पुस्तकों के रूप में, राजा साहब के चित्रों के साथ, छपवाया। समाचार-पत्रों में राजा साहब के चित्र निकले और कॉन्फ़्रेन्स को सफल बनाने के लिये स्वयं राजा साहब ने भी अपनी थैलियाँ खोल दीं ! बड़ा भारी पण्डाल बनाया गया और उसको खूब सजाया गया। राजा साहब के जुलूस के लिये अछूतों ने यह तय किया; कि वे खुद राजा साहब की गाड़ी खींचेंगे !

आखिर कॉन्फ़्रेन्स के दिन सबेरे ही राजा साहब ने हमको बुलवा भेजा। हम समझे थे, कि प्रेज़िडेंशल ऐड्रेस पढ़ने का अभ्यास करेंगे या कोई और खास बात होगी ? परन्तु जब राजा साहब के यहाँ पहुँचे, तो मालूम हुआ कि आपने सिर्फ़ इसलिए बुलाया है, कि कॉन्फ़्रेन्स के लिये—राजा साहब की शान को देखते हुए, कोई मुनासिब-सा जोड़ा पसन्द करें। हमने जो वहाँ कारचोबी की अचकन और जामावार की शेरवा-नियों का ढेर देखा, तो मुँह खोलकर रह गए। राजा साहब ने बड़े प्रेम से हमारे कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"अब बताओ भाई, जुलूस में कौन-से कपड़े पहन कर जाऊँ, और वहाँ कपड़े बदलने का इन्तज़ाम कैसे होगा ?"

हमने कहा—"सरकार, यह आपका दरबार नहीं है और न वहाँ आप एक राजा की हैसियत से जायँगे।"

राजा साहब ने आश्चर्य से कहा—"फिर-फिर ! तुम्हारा मतलब क्या है ?"

हमने कहा—"हुज़ूर, आप अछूतों के सबसे बड़े लीडर बन कर जा

रहे हैं। इस अवसर पर आपको यह दिखाना है, कि मैं राजा नहीं, वरन् अछूतों का जातीय सेवक हूँ!"

राजा साहब ने रोष से कहा—"अछूतों का सेवक? मैं राजा होकर, अछूतों का—दो कौड़ी के अछूतों का—सेवक! ये नाली के कीड़े और मैं इनका सेवक? यह तुम क्या कह रहे हो?"

हमने फिर राजा साहब को चमकारा, थपथपाया और ज़रा उनको ठण्डा करके कहा—"मिनिस्टरी लेने के ये ही दाँव-पेच हैं।"

मिनिस्टरी का नाम सुनते ही राजा साहब फिर दुम हिलाने लगे और प्रेम से फिर हमारी पीठ पर हाथ फेर कर बोले—मेरा मतलब यह है, कि जो तुम कहो, वह पहन कर चलूँ।"

हमने कहा—"आप खद्दर की अचकन और खद्दर की टोपी पहन कर चलें।"

राजा साहब ने आश्चर्य से कहा—"खद्दर?"

हमने कहा—"जी हाँ, यही लीडरों की वर्दी होती है। घर में चाहे आप विलायती साबुन से मुँह धोना क्या, विलायती कुत्ते तक के विलायती सेन्ट लगवाएँ और एक भी देशी चीज़ आपके घर में न हो, मगर बाहर जाने के लिये एक-आध खद्दर का कपड़ा होना ज़रूरी है!"

राजा साहब ने घबरा कर कहा—"तो भाई! जल्दी से दर्ज़ी को बुलवाओ! वह फ़ौरन् सिए खद्दर की अचकन और टोपी। मेरे यहाँ तो है नहीं, और न मेरे यहाँ किसी और के पास है।"

हमने फ़ौरन् दर्ज़ी का इन्तज़ाम किया और राजा साहब के लिये खद्दर का जोड़ा तैयार कराया, जो जुलूस के समय तक बिल्कुल तैयार

राजा साहब

भाइयों और बहिनों !...नहीं-नहीं यह तो कटा हुआ है। मैं समझा था यहाँ औरतें भी होंगी, पर आप लोगों ने किसी को बुलाया ही नहीं !

पृष्ठ—१६

हो गया। राजा साहब इसी जोड़े को पहनकर हारों और फूलों से लदे हुए एक बहुत बड़े जुलूस के साथ उस गाड़ी में रवाना हुए, जिसको अछूत खींच रहे थे। रास्ते भर में राजा साहब पर फूल बरसाए गए, राजा साहब के जयकार का घोष होता रहा और जुलूस को रोक-रोक कर चित्र लिए गए। राजा साहब रुमाल से अपना मुँह इस तरह छिपाये हुए थे, मानो यह जुलूस आपकी बरात का है और आप अछूत कॉन-फ़्रेन्स के प्रधान नहीं, वरन दूल्हा हैं।

आख़िर दो घण्टे बाद जुलूस पण्डाल तक पहुँचा और राजा साहब अपने जयघोष की गूँज में पण्डाल के भीतर पहुँचे। पण्डाल में हज़ारों आदमियों का जमाव था और हिन्दुस्तान भर के अछूत लीडर जमा थे। राजा साहब के पहुँचते ही कॉनफ़्रेन्स का कार्य आरम्भ हो गया। स्वागत-समिति के अध्यक्ष ने अपना वक्तव्य पढ़ा और उसके बाद राजा साहब तालियों की गूँज में अपना अभिभाषण पढ़ने को खड़े हुए। राजा साहब को हमने आठ-दस दिन तक भाषण पढ़ने का अभ्यास करा दिया था, और अब हमको विश्वास था कि यह तोता अपना पाठ भली भाँति सुना देगा। फिर भी हम राजा साहब के पास ही बैठे थे कि मालूम नहीं क्या बात पैदा हो जाय!

राजा साहब उठे तो बड़ी शान से, मगर फ़ौरन ही आपने इधर-उधर देखकर एक बार बड़े ज़ोर से आवाज़ दी—"अरे कोई है?" हम फ़ौरन झपट पड़े, मगर इतनी ही देर में सारा पण्डाल हँसी से गूँज चुका था। राजा साहब ने हमको देखकर कहा—"तुम्हीं को तो देख

रहा था। अब यह बताओ कि यहाँ औरत तो कोई है नहीं, और तुमने 'बहनो और भाइयो' लिखा है।"

हमने चुपके से कहा—"इसको छोड़ जाइए।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा मेरा ख़ासदान मँगवाओ, मैं पान खाकर पढ़ता हूँ।"

चोबदार ने ख़ासदान पेश किया और राजा साहब ने अपना अभिभाषण पढ़ना आरम्भ किया :

"भाइयो और बहनो !—नहीं-नहीं, यह तो कटा हुआ है। बात यह है कि मैं समझता था कि यहाँ कुछ औरतें भी होंगी, इसलिये पहले 'बहनो' लिख दिया था, मगर आप लोगों ने किसी औरत को बुलाया ही नहीं·······

हम फिर लपक कर राजा साहब के पास आए, इसलिए कि पण्डाल हँसी से दबा जा रहा था। लोग एक-दूसरे को रोक रहे थे, मगर हँसी किसी से न रुकती थी। हमने राजा साहब के कान में कहा कि आप सिर्फ़ यह कह दें कि मेरी तबियत अच्छी नहीं है, इसलिए मेरा भाषण सेक्रेटरी पढ़ देगा।

राजा साहब ने जनता के शान्त होते ही कहा—"बात यह है कि मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, कल से नज़ला हो गया है और आज क़ब्ज़ भी है—(जनता ने फिर अट्टहास किया) हकीम साहब ने नुस्ख़ा लिखा है और मेरा इरादा है कि अब की ज़रा जमकर इलाज करवाऊँ, बहुत दिनों से बीमारी चली आती है, किसी तरह तबीयत सँभलती ही नहीं। परहेज़ भी करता हूँ। आज एक फुलका और ज़रा-सी मूली की

तरकारी खाई है— पण्डाल में लोग हँसी के मारे लोटे जा रहे थे और हम अत्यन्त व्याकुल थे, कि आख़िर राजा साहब को क्योंकर रोकें।

राजा साहब ने बड़ी देर की बकवास के बाद हमसे अभिभाषण पढ़ने को कहा। मगर अब पण्डाल की हवा बिगड़ चुकी थी। हम पूरा भाषण पढ़ गए, मगर जनता मज़ाक़ ही उड़ाती रही। अन्त में कुछ लोग चुप हो गए थे कि राजा साहब ने नई हरकत यह की, कि एक वाक्य पर लोगों ने तालियाँ जो पीटीं, तो आप भी लगे तालियाँ बजाने। परिणाम यह हुआ कि हम अधूरा ऐड्रेस छोड़कर भागे वहाँ से और जनता ने हँसी और कोलाहल के साथ तरह-तरह की फब्तियाँ भी शुरू कर दीं। यदि हम राजा साहब को थोड़ी ही देर में तबीयत की ख़राबी का बहाना करके पण्डाल से निकाल न लाते, तो नहीं मालूम आज वह अपनी क्या गति बनवा लेते !!

राजा साहब का ख़िताब

हम तो गए राजा साहब को नए साल की बधाई देने, वहाँ देखते क्या हैं, कि राजा साहब अलग मुँह लटकाए बैठे हैं और मिर्ज़ा जी अलग कुछ रोनी सूरत बनाए हुए हैं। सामने खुला हुआ था अख़बार और मालूम भी होता था, कि उसी अख़बार में राजा साहब ने किसी के मरने की ख़बर पढ़ ली है या राजा साहब पर कोई सम्मन उस अख़बार में निकल गया है। राजा साहब और मिर्ज़ा जी की सूरत देख कर नए साल की बधाई देना तो गए भूल; हाँ, यह फ़िक्र ज़रूर हो गई, कि आख़िर बात क्या है? राजा साहब को सलाम किया, तो उन्होंने एक ठण्डी साँस भर कर जवाब दे दिया। मिर्ज़ा जी से इशारे में पूछा, तो वह इशारा समझने में गावदी साबित हुए और समझे कि हम ख़ासदान माँग रहे हैं। उन्होंने चुपके से ख़ासदान उठा कर दे दिया और हम लगे ख़ासदान को देखने, कि उसमें आख़िर इतने रंज की क्या वजह हो सकती है मगर उसमें पान ही पान रक्खे थे। आख़िर ख़ासदान में इस

रंज की कोई वजह न पा कर हमने हिम्मत करके राजा साहब से ख़ुद ही पूछा—"हुज़ूर ख़ैरियत तो है; मिज़ाज तो अच्छा है ?"

राजा साहब जैसे किसी गहरे सोच से चौंक कर बोले—"ऐं ? हाँ, अच्छा हूँ !"

हमने फिर ज़ोर दे कर कहा—"कोई बात तो ज़रूर है, आख़िर बात क्या है, मुझे भी तो मालूम हो !"

मिर्ज़ा जी ने मुँह सुखा कर कहा—"कुछ नहीं, ख़िताब छपे हैं नए साल के। नवाब साहब फूलपुर को ओ० बी० ई० का ख़िताब मिला है।

अब हम समझ गए, कि बात असल में क्या है, और यह समझते ही दिमाग़ ने अपना काम शुरू कर दिया। हमने फ़ौरन मुँह बना कर, बल्कि मुँह चिढ़ा कर, कहा—"नवाब साहब फूलपुर वही न, जो सरकार से मिलने कभी-कभी आते हैं। वही फटीचर-से मालूम होते हैं, कि सात फ़ाक़ों से हों।

राजा साहब ने कहा—"हाँ, हाँ, वही अभी पिछले हफ़्ते रुपया क़र्ज़ लेने आए थे; मगर अब तो वह बड़े आदमी हैं, ख़िताब मिला है इतना बड़ा ! अख़बार में तस्वीर छपी है, ऐ—यह-यह देखो।"

हमने तस्वीर देखते हुए कहा—"हुज़ूर, ख़िताब मिले या कुछ हो, मगर सरकार माफ़ कीजिएगा, सूरत से तो अब तक यही बरसता है जैसे अभी कानों का मैल निकाल कर बैठे हों !"

राजा साहब ने ठण्डी साँस लेकर कहा—"सूरत नहीं, उसके

भाग देखो, भाग ! इससे तो अच्छा ही है, कि इतना बड़ा ख़िताब मार दिया बैठे-बिठाए !"

हमने राजा साहब की आँखों में आखें डाल कर कहा—"हुज़ूर की भी क्या बातें हैं। आपने किस दिन कोशिश की थी ख़िताब की, जो नहीं मिला। आप तो अगर इशारा भी कर देते, तो अब तक एक क्या पचास ख़िताब मिल गए होते। मगर हुज़ूर को तो जैसे इन बातों की परवा ही नहीं है।"

राजा साहब ने बड़े ग़ौर से हमारा मुँह देखा, मगर उनके कुछ कहने से पहिले ही मिर्ज़ा जी बोल उठे—"यह बात तो आप ठीक कहते हैं, कि हमारे सरकार को तो जैसे इन बातों का शौक़ ही नहीं है; नहीं तो भला कोई बात थी, जो हुज़ूर का मुँह देखने वाले इतना बड़ा ख़िताब पा जायँ और सरकार को ख़िताब न मिले !"

राजा साहब ने अपनी रान पर हाथ मार कर कहा—"तुम लोगों की यही बात तो बुरी लगती है। भला मैं तुमको कब रोकता हूँ, कि यह काम करो और यह न करो। अगर तुमको ख़्याल था, कि मुझे इन बातों का ख़्याल नहीं है, तो भई, तुम ही लोग ख़्याल करते।"

हमने कहा—"ऐ हुज़ूर, भला यह तो बताइए कि कभी आपकी तरफ़ से कोई इशारा हुआ था ? ज़रा भी आपकी मर्ज़ी का पता चल जाता, तो ये ग़ुलाम ज़मीन-आसमान एक कर देते।"

राजा साहब ने हमारी क़ाबलियत में शक करते हुए कहा—"हाँ, और क्या जैसे तुम्हारे बस ही की तो बात थी ! मियाँ, यह भाग वालों

को भाग से मिला करते हैं। ये चीज़ें किसी की कोशिश से नहीं मिला करती हैं।"

हमने कहा—"हुज़ूर ख़ता माफ़, रुपया से सब कुछ होता है और इन चीज़ों की भी एक क़ीमत होती है।"

मिर्ज़ा जी ने शायद अब समझा, कि हम राजा साहब को घेर-घार कर किस रास्ते पर ला रहे हैं। हमारी यह बात सुनते ही वह बोले—"हुज़ूर सौ बातों की एक बात इन्होंने कह दी, कि रुपया असल चीज़ है।"

हमने कहा—"अरे भई, मैं तो यह सब हथकण्डे जानता हूँ। इन बातों में रुपया बहाया जाता है पानी की तरह।"

राजा साहब ने खखारते हुए कहा—"फिर वही! अरे भई, तुमको किसने मना किया था, कि रुपया ख़र्च न करो और अगर मुझ ही से कहलवाना चाहते हो, तो लो, मैं अब इजाज़त देता हूँ। मगर मालूम तो हो कि रुपया आख़िर ख़र्च किस तरह होगा?"

हमने इस डर के मारे, कि कहीं मिर्ज़ा जी न बोल उठें, और न जानें क्या कह दें, जल्दी से कहा—"सरकार, इसकी तरकीब यह है, कि आज इस अफ़सर को डाली भेज दी, कल उस हाकिम के यहाँ कोई सौग़ात चली गई। आज इसकी दावत कर दी, कल उसकी पार्टी कर डाली, कभी किसी सरकारी फ़ण्ड में रुपया भेज दिया, कभी किसी हाकिम के बच्चे को खिलौने भेज दिए। यही तरकीबें हैं, अफ़सरों का दिल हाथ में लेने की।"

राजा साहब बड़ी-बड़ी आँखें निकालते हुए देखते रहे। उसके बाद

बोले—"तो आख़िर इसमें ऐसा कौन सा ख़र्च बैठ जायगा ? आख़िर एक डाली में क्या ख़र्च होगा ?"

मिर्ज़ा जी झट से बोल उठे--"यही कोई सौ-डेढ़ सौ रुपया।"

हमने दाँत पीस कर मिर्ज़ा जी को घूरा, तो वह ज़बान दाँतों से दबा कर रह गए, और हमने कहा--"ख़ैर, सौ-डेढ़ सौ वाली डाली, न तो किसी बड़े हाकिम के यहाँ भेजने के लायक़ होती है, और न इतने बड़े रईस को ऐसी डाली भेजना ही चाहिए।"

राजा साहब ने कहा—"तुम्हारा मतलब यह है, कि ऐसी डाली न जाय, बल्कि इससे क़ीमती जाय।"

हमने कहा—"हुज़ूर बात यह है. कि ऐसी छोटी-सी डाली, तो हाकिमों के ख़ानसामाओं और बैरों ही के हत्थे चढ़ जाती है। दूसरे नाम तो होगा कि हुज़ूर के यहाँ से डाली आई है और वह होगी ऐसी कुछ नहीं। कुछ नहीं, तो कम से कम पाँच सौ की डाली तो हो। वैसे तो हज़ार-हज़ार और दो-दो हज़ार की डालियाँ होती हैं। अभी राजा साहब आसमानपुर ने जो डाली बड़े साहब के यहाँ भेजी थी, वह देखने के क़ाबिल थी।"

राजा साहब ने जल्दी से पूछा—"आख़िर क्या था उसमें ?"

हमने जल्दी-जल्दी पूरा क़िस्सा गढ़ कर कहा—"हुज़ूर एक सौ एक कश्तियाँ थीं उस डाली में। बहुत उम्दा-उम्दा क़िस्म के मेवे और मिठाइयाँ तो ख़ैर थी हीं, मगर कलकत्ता और बम्बई से इस डाली के लिए केक बनवाए गए थे, एक केक था बिलकुल ताजमहल का नक़्शा, एक दूसरा केक था इसमें 'गेट वे ऑफ़ इण्डिया' (Gateway of India)

की तस्वीर बनाई गई थी। ख़ैर, यह बातें तो अलग रहीं, चाँदी के कोई बीस बर्तन थे और शिकारी चिड़ियाँ अलग थीं, मगर सब ज़िन्दा। उनके लिए एक बन्दूक़ भी भेजी गई थी, कि साहब ख़ुद ही उस बन्दूक़ से चिड़ियों का शिकार करें।"

राजा साहब ने इन सब बातों पर यक़ीन करते हुए कहा—"ख़ूब भई, ख़ूब! तरकीब तो अच्छी थी। मगर उस डाली पर तो हज़ार-बारह सौ से कम ख़र्च न बैठा होगा।"

मिर्ज़ा जी ने फिर कुछ बोलने के लिए मुँह खोला ही था, कि हमने जल्दी से कहा—"जी हाँ, कोई पन्द्रह सौ रुपए की डाली थी।"

राजा साहब ने कहा—"चलो, तुमको मेरी तरफ़ से इजाज़त है, कि करो डालियों का इन्तज़ाम; मगर किसी रजवाड़े से आँख नीची न होने पावे।"

हमने कहा—"इसका हमारा ज़िम्मा। हुज़ूर ही की इज़्ज़त से हमारी इज़्ज़त है। हम इस दर्बार का भरम कहीं न खोने देंगे।"

राजा साहब ने उसी दिन पहिली डाली के इन्तज़ाम के लिए दो हज़ार के नोट गिन दिए; और जब हम अपनी जेबें गरम करके चले, तो रास्ते ही में मिर्ज़ा जी ने कहा—"यार, कमाल करते हो तुम! ऐसा इस अक्ल के अन्धे को शीशे में उतारा, कि वाह वा!"

हमने कहा—"मगर भई मिर्ज़ा, तुम्हारे मारे नाक में दम है। इतनी बड़ी तो स्कीम और आप बोल उठे सौ डेढ़ सौ रुपया। रहे आप यूँ ही!

मिर्ज़ा जी ने कहा—"भई, वह तो ख़ैर ग़लती हो गई, मगर अब तो हिसाब लगाओ, कि इसमें हम लोगों के लिए बच क्या रहेगा।"

हमने कहा—"इसमें तो ख़ैर, कुछ भी न बच सकेंगे।"

मिर्ज़ा जी के चेहरे का रङ्ग उड़ गया! कहने लगे—"हैं, यह क्या? अरे भई, हज़ार रुपया तो बचना ही चाहिए। बस, डाली के लिए एक हज़ार काफ़ी है।"

हमने हँस कर कहा—"आप तो हुए हैं घामड़! इस पूरे दो हज़ार का सामान ख़रीद लो और राजा के सामने डाली बना कर पेश कर दो। फिर दूसरी डालियों में सबकी सब रक़म बच जाया करेगी। क्या समझे?"

मिर्ज़ा जी मुँह खोल कर रह गए, तो हमने कहा—"हो न गावदी। अरे भई, एक डाली का सामान ख़रीदे लेते हैं, चाँदी के बर्तन बनवाए लेते हैं, मिठाइयाँ और केक थोड़े-थोड़े बनवा लेंगे। इसके बाद रोज़ तो डाली जायगी और हर डाली के रुपए मिलेंगे; मगर सामान सब इसी डाली का काम आता रहेगा, सिवाय फलों और मिठाइयों के!!

मिर्ज़ा जी के अब समझ में जो आया, तो उछल पड़े। इसलिए, कि उसमें सोलह आना फ़ायदा ही था, और ऐसा ही हुआ भी, कि अब तक कोई आठ डालियाँ लगाई जा चुकी हैं। रुपया भी सब हमको मिलता है और मिठाइयाँ भी बचती हैं! किसी अफ़सर बेचारे को ख़बर भी नहीं, कि राजा साहब ख़िताब के लिए क्या-क्या कर रहे हैं! ख़िताब मिले तो क्योंकर?

राजा साहब की सनक

हमारे राजा साहब को भी अजब-अजब क़िस्म के दौरे उठा करते हैं, और नए-नए शौक़ सवार होते हैं। कभी बाग़ लगाने की धुन होती है तो दुनिया के सब काम छोड़ कर बस बाग़ लगाने के पीछे पड़ जाते हैं। कभी तस्वीरों का शौक़ होता है तो हज़ारों रुपये बस इसी काम में पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। कभी टिकट जमा करने की सूझ जाती है तो दिन-रात टिकट ही जमा हुआ करते हैं। कभी पुराने सिक्के जमा होते हैं, तो बस यही दुनिया का सबसे बड़ा काम होता है और फिर उनकी बला से दुनिया में कुछ भी होता रहे। कोई मरे, कोई जिए, आँधी आए,

पानी बरसे, दुनिया इधर की उधर हो जाए; मगर हमारे राजा साहब को अपने काम से काम। थोड़े दिनों का शौक़ होता है। फिर बाग़ भी उजड़ कर जङ्गल बन जाता है। तस्वीरें भी रद्दी हो जाती हैं। टिकट भी इधर-उधर फिंक जाते हैं और पुराने सिक्के भी जिसके हाथ लगते हैं, वह ले जाता है। अब आजकल राजा साहब को चिड़िया-घर बनाने की सनक सवार है और रुपया चिड़ियों पर पानी की तरह बहाया जा रहा है। हज़ारों पिंजरे कोठी के बहुत से कमरों में रक्खे हुए हैं। बीसों आदमी चिड़ियों की ख़िदमत करने के लिए नौकर हैं और राजा साहब हैं, कि तालुक़ेदारी छोड़ कर चिड़ीमार बने हुए हैं। हर वक़्त बस चिड़ियों का ज़िक्र है और इसी ज़िक्र से राजा साहब की दिलचस्पी होती है। हम लोग जानते हैं कि यह शौक़ भी बस चार दिन का है। फिर न यह पिंजरे नज़र आएँगे और न यह चिड़ियाँ दिखाई देंगी। मगर राजा साहब के यहाँ रहना है, तो उनसे ज़्यादा चिड़ियों से ख़ुद अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर करते हैं और हमारा भी इसमें नुक़सान ही क्या है। राजा साहब को चाहे जो शौक़ हो, हमको तो मतलब अपने फ़ायदे से है। और जब तक हमारा फ़ायदा हो रहा है, राजा साहब को जो शौक़ भी हो, हम उसमें दिलोजान से शरीक हैं। चिड़िया-बाज़ार गए, कोई चिड़िया ख़रीद लाए और उसको सोने की चिड़िया के दामों राजा साहब के हाथ बेच डाला। अब आप ही बताइए, कि यह सौदा क्या बुरा है—जब तक राजा साहब ख़ुद रात को उड़ने वाली चिड़िया बने हुए हैं; हम अगर उनसे फ़ायदा न उठावें, तो यह हमारी बेवक़ूफ़ी के सिवा और क्या हो सकता है ?!

कल ही का ज़िक्र है, कि राजा साहब एक-एक पिंजरे में एक-एक चिड़िया को देखते फिर रहे थे। मीर साहब ने एक मैना की तारीफ़ करते हुए कहा, "कितनी ख़ूबसूरत मैना है!" राजा साहब मैना की तारीफ़ पर इतने ही ख़ुश हुए कि जितना कोई अपनी औलाद की तारीफ़ पर ख़ुश होता है! मगर मिर्ज़ा जी ने हमको आँख मार कर कहा, हाँ, ख़ूबसूरत तो ज़रूर है, मगर क्यों सेक्रेटरी साहब, वह मैना जो मैंने आपको दिखाई थी, कैसी थी?"

राजा साहब ने कहा—"कौन सी मैना?"

हमने कहा—"हुज़ूर क्या कहूँ मैं, वह मैना तो ऐसी है, कि बस, यह सारा चिड़िया-घर एक तरफ़ और अकेली वह मैना एक तरफ़!

मिरज़ा जी ने कहा—"क्या कहूँ मैं, मेरा तो दिल लोट कर रह गया, कि किस तरह की मैना इस चिड़िया-ख़ाने में आ जाए।"

हमने कहा—"और भाई वह तोता भी इसी चिड़िया-ख़ाने के क़ाबिल था।"

राजा साहब ने घबरा कर कहा—"अरे भाई, कुछ बताओगे भी, कैसी मैना और कैसा तोता?"

हमने कहा—"हुज़ूर, वह एक मैना है, एक साहब के पास, ईरान से लाए हैं, बस मैं क्या कहूँ, कि कैसी है।"

राजा साहब ने कहा—"ईरान की है और कुछ बोलती भी है?"

मिरज़ा जी ने कहा—"बोलती तो थी, ख़ूब फ़ारसी बोलती थी। मगर अब उन हज़रत ने उसको उर्दू और हिन्दी जो सिखाना शुरू की, तो वह फ़ारसी बोलना भी भूल गई। मगर साहब बड़े अच्छे

ख़ानदान की है। सुना है कि उसकी माँ अफ़ग़ानिस्तान की थी और अमानुल्ला ख़ाँ ने इसी मैना को अपने एक ईरानी दोस्त को दिया था। उनके यहाँ एक दिन पिंजरा खुला रह गया और उड़ कर वह एक साहब के पास आ गई; जिनसे अब यह साहब, जिनके यहाँ मैंने देखी है, ले आए।"

राजा साहब ने मुँह खोल कर कहा—"भई फिर तो वह मैना वाक़ई बड़ी क़ीमती होगी।"

हमने कहा—"मैं तो उसको देख कर ऐसा ख़ुश हुआ, कि बग़ैर हुज़ूर की इजाज़त के ५००) रुपए तक उसकी क़ीमत लगा दी, मगर वह कम्बख़्त राज़ी न हुआ।"

राजा साहब—"और वह तोता कैसा है ?"

मिरज़ा जी ने कहा—"तोते के लिए तो ख़ैर, क़ीमत लगाने की हिम्मत न हुई। वह ज़ारे-रूस के तोते की औलाद में से है और मालूम नहीं इस शख़्स के हाथ क्योंकर लगा—रूसी तोते कहीं देखने को भी नहीं मिलते। रूसी-ज़बान ऐसे फर्राटे से बोलता है जैसे हम और आप उर्दू या हिन्दोस्तानी बोलते हैं !!"

हमने कहा—"वह तो इस क़ाबिल है कि चाँदी के पिञ्जरे में रक्खा जाय और सोने की प्यालियाँ हों।"

राजा साहब ने कहा—"तुम लोगों ने उस मैना और तोते का ज़िक्र छेड़ कर अब ऐसा शौक़ पैदा कर दिया है, कि बग़ैर उन दोनों के यह चिड़िया-ख़ाना अच्छा नहीं मालूम होता। क्या वह ५००) रुपया तक में मैना देने को तैयार नहीं हुआ ?'

मिरज़ा जी ने कहा—"जी हाँ, जब सेक्रेटरी साहब ने ५००) रुपया दाम लगाए, तो वह हँसने लगा ! मगर मेरा ख़्याल है, कि १०००) रुपया में दोनों चीज़ें कोशिश करने से, मिल जायँगी।"

हमने जल्दी से कहा—"आपकी भी क्या बातें हैं। १०००) रुपये में दोनों चीज़ें ! तोते की क़ीमत आप क्या समझते हैं ?"

मिरज़ा जी ने कहा—"क़ीमत कुछ भी हो—मगर जब १०००) रुपया उसके सामने गिना जायगा तो इनकार ज़रा मुश्किल से हो सकेगा।"

राजा साहब ने कहा—"भाई, कुछ भी हो, मगर यह दोनों चीज़ें आनी ही चाहिएँ मेरे चिड़ियाख़ाने में ! मगर यार, वह जो तुम परसों बुलबुल लाए हो उसमें तो अब तक २५०) रुपये की कोई बात मालूम नहीं हुई।"

मिरज़ा जी ने कहा—"बात हो या न हो—२५०) रुपया तो सिर्फ़ इस बात की क़ीमत है, कि वो शीराज़ की है और उस नस्ल की है, जिसकी बुलबुलें बादशाहों के महल में रहा करती हैं।"

हमने कहा—"जी हाँ, इसकी दुम देखिए। कैसी शानदार है। देसी बुलबुलों की दुम ऐसी नहीं होती।"

राजा साहब ने कहा—"हाँ, यह बात तो है। मगर भाई, उस तोते और मैना का सौदा करो।"

हमने कहा—"हुज़ूर, वह कम्बख़्त दे भी, मैंने पहले ही बग़ैर आपके पूछे, सौदा कर लिया होता।"

मिरज़ा जी ने कहा—"अच्छा तुम चुप रहो। मैं आज १०००) रुपया लेकर जाऊँगा और उसके सामने ढेर कर दूँगा। देखूँ तो, कैसे नहीं देता कमबख़्त !!

हमने कहा—"अगर वह १०००) रुपये में दोनों चीज़ें दे दे, तो समझो मुफ़्त मिलीं और अगर यह दोनों चीज़ें मिल गईं तो हमारे चिड़ियाख़ाने में किसी और चिड़िया की ज़रूरत ही नहीं।"

राजा साहब ने कहा—"चलो मैं तुमको रुपया निकाल दूँ और तुम इसी वक़्त जाओ। मगर ख़ाली हाथ लौट कर न आना। जिस तरह बन पड़े, वह तोता और मैना अपने साथ लेकर आना।"

मिरज़ा जी ने कहा—"अजी हुज़ूर, तो क्या मैं कोई कसर उठा रक्खूँगा। अपनी-सी हर कोशिश करूँगा।"

राजा साहब ने फ़ौरन १०००) रुपया गिन कर मिरज़ा जी के हवाले कर दिया और मिरज़ा जी हमको लेकर रवाना हो गए। अब हम लोगों को यही फ़िक्र थी, कि किसी तरह अच्छी मैना मिल जाए और कोई उम्दा क़िस्म का तोता। चाहे दो-चार रुपया ख़र्च ही क्यों न हो जाए!"

हमने मिरज़ा जी से कहा—"भाई तुमने १०००) रुपया पर जल्दी से तोड़ कर लिया, नहीं तो कुछ और मिल जाता।" मगर मिरज़ा जी का यह कहना भी सच है, कि आख़िरी मरतबा रुपया लेना थोड़े ही है। कल फिर कोई चिड़िया फँस जाएगी। एकदम से हाथ मारने की ज़रूरत ही क्या है—और हम लोगों के लिए नौकरों-चाकरों को बाँट कर जो चार-चार सौ रुपया बचेगा, वही क्या कम है? हम भी चुप हो रहे और दोनों इसी तरह बातें करते हुए, चिड़िया बाज़ार पहुँचे, ताकि कोई अच्छी-सी मैना और कोई उम्दा-सा तोता जो ज़ारे-रूस के तोते की नस्ल का मालूम हो, ख़रीद लें। तमाम बाज़ार देखने के बाद एक मैना

राजा साहब

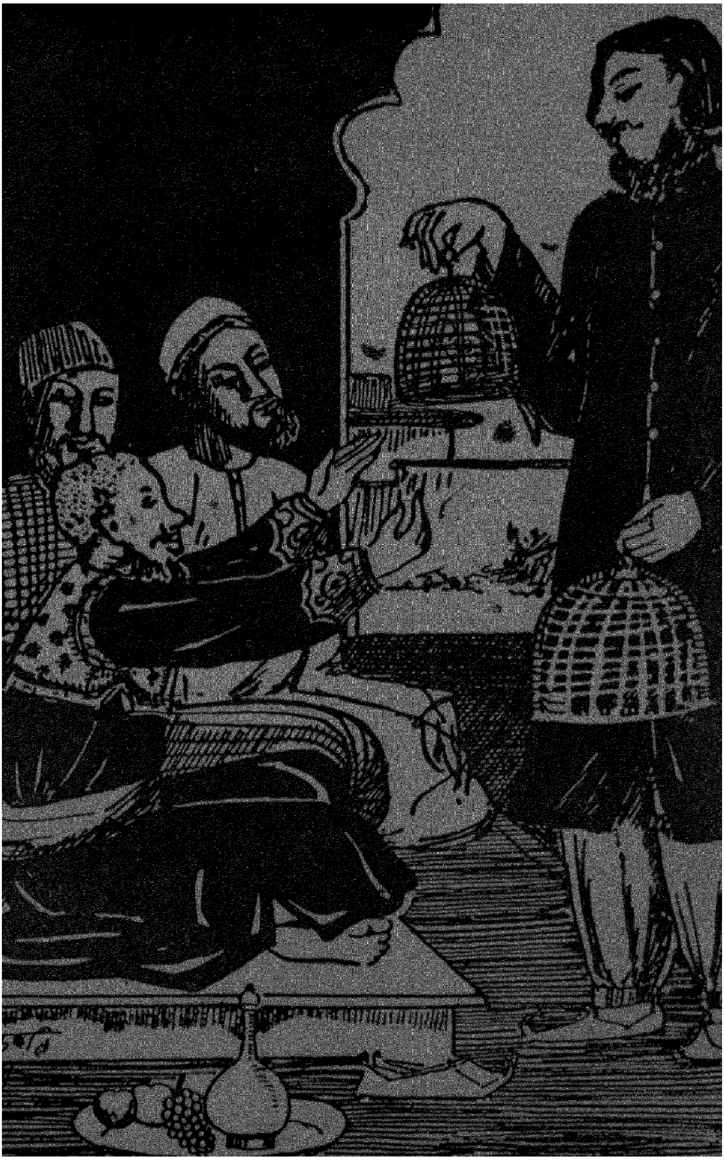

राजा साहब ने खुश होकर कहा "लाओ ज़रा देखें तो. मैना और तोता !

पसन्द की, जो १।।) रूपया की मय पिंजरे के मिली, और एक तोता ।।।) आने का लिया। वहाँ से खुश-खुश वापस आए, इसलिए कि १०००) रु० में से सिर्फ २।) रु० खर्च किया था। बाक़ी सब हमारे पास था। राजा साहब हमारे हाथ में पिंजरे देख कर उछल पड़े और बच्चों की तरह तालियाँ बजाकर बोले—"क्या ऐंठ लाए ?"

मिरज़ा जी ने कहा—"भला कोई बात भी हो—१०००) रु० देखते ही उसकी आँखें खुल गईं। पहले तो बहुत हाँ-नहीं करता रहा, मगर जब मैंने उससे कहा कि तुम इन क़ीमती चिड़ियों को भी ग़ारत करोगे और इतनी बड़ी रक़म भी हाथ से खो दोगे, तो उसकी समझ में आ गया और जब मैंने उसको कुछ-कुछ राज़ी देखा, तो रूपया उसके सामने रख कर ज़बरदस्ती ये पिंजरे उठा लिए। वह नहीं-नहीं करता ही रह गया और मैं चलता बना।"

राजा साहब ने खुश होकर कहा—"लाओ ज़रा देखें तो मैना और तोता।"

हमने कहा—"कमबख़्त ने दोनों को ग़ारत कर दिया—यह तोता ऐसे फ़र्राटे से रूसी ज़बान बोलता था, कि बड़े-बड़े रूसी दंग रह जाते थे। मगर आपने इसको हिन्दुस्तानी ज़बान सिखाना शुरू कर दी।"

मिरज़ा जी ने कहा—"और मैना का भी यही हुआ, कि उसको गूँगी करके रख दिया। नहीं तो फ़ारसी के शेर तक पढ़ती थी और ऐसी प्यारी फ़ारसी बोलती थी कि क्या कोई आदमी बोलेगा।"

राजा साहब ने मैना को इधर-उधर से देखते हुए कहा—"यों

देखने में तो यही मामूली मैना मालूम देती है, जैसी हमारे चिड़ियाखाने में और भी मैनाएँ हैं।

मिरज़ा जी ने हँस कर कहा—"तो हुज़ूर, मैना तो यह है ही। एक मैना, मैना ही मालूम हो सकती है, क़ीमत बढ़ने से उसका क़द थोड़े बढ़ सकता है और न कोई मैना घोड़ा या हाथी नज़र आ सकती है। मगर क़ीमत तो इसकी है, कि यह अमानुल्ला ख़ाँ की मैना का बच्चा है।"

राजा साहब ने कहा—"मगर एक बात है, इसकी तन्दुरुस्ती कुछ अच्छी है।"

हमने कहा—"तन्दुरुस्ती तो अब देखिएगा। जिन साहब के पास यह थी वह न खाने-पीने की कोई फ़िक्र करते थे, न उसकी कोई और ख़िदमत होती थी। अब यहाँ यह ढंग से रहेगी, तो देखिएगा कि कैसी निकलती है।"

राजा साहब ने कहा—"इसके लिए चाँदी का पिञ्जरा बनवाया जाय और सोने की प्यालियाँ हों। यह हर वक़्त मेरे कमरे में रहे। पिञ्जरे के ऊपर मख़मल का ग़िलाफ़ चढ़वा दो और मैं ख़ुद इसको फ़ारसी पढ़ाऊँगा।"

मिरज़ा जी ने कहा—"अगर इतनी फ़िक्र हुज़ूर ने ख़ुद इसकी रक्खी, तो यह चार ही दिन में अपनी भूली हुई ज़बान याद कर लेगी। और फिर देखिएगा, कि यह मैना है या कोई चीज़।"

राजा साहब ने कहा—"हाँ-हाँ, मैं ख़ुद इसकी निगरानी करूँगा।

चिड़ियाख़ाने की दूसरी चिड़ियों में रख कर इसको ग़ारत थोड़े करूँगा—अच्छा यह तोता तो लाओ इधर।"

हमने तोते का पिञ्जरा बढ़ाते हुए कहा—"जी हाँ, इसको देखिए। इसका नाम टॉर्जन है और रूसी तोतों की जो सब से अच्छी क़ौम होती है, उसी का है। इसके बाप और माँ अब तक रूसी चिड़ियाखाने में हैं। यह तोता इन साहब को एक रूसी शाहज़ादे ने, जो बहुत ग़रीब हो गए थे, तोहफ़े के तौर पर दिया था।"

राजा साहब ने इस तोते का यह हाल सुनकर बहुत अदब के साथ पिञ्जरा हाथ में उठाया और तोते को ग़ौर से देखने के बाद कहा—"इतना अच्छा और ऐसा क़ीमती तोता और सूरत देखिये तो कुछ नहीं। मालूम होता है कि जैसे यहीं कोई देसी तोता है।"

हमने कहा—"जी हाँ, अगर किसी को इस तोते का यह हाल मालूम न हो, तो उसको यक़ीन नहीं आ सकता, कि यह ऐसा क़ीमती होगा। मगर हुज़ूर इसको भी अपनी निगरानी में रक्खें तो अच्छा हो।"

राजा साहब ने कहा—"इसके लिये भी चाँदी का पिञ्जरा और सोने की प्यालियाँ बनवा दी जायँ और मख़मल का ग़िलाफ़। मगर बात यह है कि अंग्रेज़ी मैं तो पढ़ा न सकूँगा।"

मिरज़ा जी ने कहा—"तो इसको सेक्रेटरी साहब के कमरे में रक्खा जाय।"

राजा साहब ने कहा—"यह ठीक है, यह सेक्रेटरी साहब की तालीम में रक्खा जाय।"

हमने कहा—"हुज़ूर, यह तो ठीक है। मगर ऐसी क़ीमती चीज़ को रखते हुए डर मालूम होता है। दूसरी एक तरकीब मेरे ख़याल में आई है कि अगर इसको सामने वाले बँगले में मिस रोज़ के यहाँ रख दिया जाय तो हर वक़्त अंग्रेज़ी सुन कर बहुत जल्द बोलने लगेगा।"

राजा साहब ने कहा—"है तो यह भी अच्छा, अगर मिस रोज़ के यहाँ रहा तो बहुत जल्द बोलने लगेगा।"

मिरज़ा जी ने कहा—"हुज़ूर, वह जानता तो है, मगर हिन्दुस्तानी पढ़ा-पढ़ा कर उस गधे ने रूसी ज़बान बस ज़रा भुला दी है।"

राजा साहब देर तक इन्हीं दोनों तोता और मैना का ज़िक्र करते रहे और इधर मिरज़ा जी और हम दिल ही दिल में, अपने-अपने हिस्से का रुपया गिनते रहे। आख़िर राजा साहब तो महल के अन्दर चले गए और हम लोगों ने एक कमरे के अन्दर बैठकर—बटवारा किया। नौकरों को इनाम दिया और अपना-अपना रुपया सम्भाला और अपने-अपने घर की राह ली।

अब राजा साहब दिन-रात मैना को फ़ारसी पढ़ाते हैं और इस मेहनत से पढ़ाते हैं, कि अगर तालुक़ेदारी छोड़कर, लड़के पढ़ाने की नौकरी कर लें, तो भी ख़्याल यह है, कि कमा खाएँगे।

मगर वह मैना ऐसी थर्ड क्लास है कि उसने अब तक सिर्फ़ "ख़ुद" कहना सीखा है। मगर इसको क्या किया जाय कि राजा साहब इसी में ख़ुश हैं कि उनकी मैना चाँदी के पिन्जरे में बैठ कर कभी-कभी "ख़ुद" कह दिया करती है और वे दौड़ कर एक-एक को बुलाते हैं और अपनी मैना का "ख़ुद" कहना सुनवाते हैं। हर वक़्त मैना का पिंजरा सामने

रहता है। कभी अपने हाथ से उसकी सोने की प्यालियाँ साफ़ होती हैं, तो कभी पिञ्जरे की पूरी सफ़ाई की जाती है। कभी मैना को नहलाया जाता है तो कभी उसको बैठ कर खाना खिलाते हैं। तोता मिस रोज़ के यहाँ टँगा हुआ है और उसने इतने दिन में सिर्फ़ "डैमफ़ूल" कहना सीखा है। कभी-कभी राजा साहब तोते को देखने के लिए बुलाते हैं और कभी-कभी खुद टहलते हुए, मिस रोज़ के यहाँ चले जाते हैं। तोता अगर उनको देख कर "डैमफ़ूल" कह देता है, तो बहुत ख़ुश हो जाते हैं और बहुत प्यार से पिञ्जरे पर हाथ फेर कर चले आते हैं। मगर अब मिस रोज़ के यहाँ आने-जाने से राजा साहब को कुछ कुत्तों का शौक़ बढ़ रहा है और एकाध कुत्ता ख़रीदा भी जा चुका है। मालूम यह होता है, कि अब चिड़ियों के शौक़ के बाद, कुत्तों की सनक सवार होने वाली है! इसलिए हम लोग अब उसके लिये तैयार हो रहे हैं कि कुत्तमारी सीखें ताकि राजा साहब के लिए इधर-उधर से कुत्ते पकड़ कर लायें और अपने दाम बनाएं! मैना का पिञ्जरा है तो अब तक राजा के कमरे में, मगर अब उसको सबक़ पढ़ाने के बजाय, अक्सर यह होता है, कि कुत्तों को नहलवाते हैं और मोटर पर उनको हवा खिलाने के लिए निकल जाते हैं। बहरहाल जिस तरह बाग़ उजड़ा है—जिस तरह तस्वीरें रद्दी हुई हैं—जिस तरह टिकटों को फेंका गया है—उसी तरह अब चिड़िया-ख़ाना उजड़ने वाला मालूम होता है और उसकी जगह कुत्ताख़ाना आबाद होते हुए नज़र आता है। अफ़सोस यही है, कि तोता एकाध अङ्गरेज़ी की गाली और याद कर लेता और राजा साहब को दिया करता तो अच्छा था। मगर ख़ैर, उसने "डैमफ़ूल ही कह दिया, यही काफ़ी है!!

राजा साहब का उधार-खाता

मैं एक बहुत छोटा-सा आदमी हूँ। छोटी-सी एक दुकान है, और वह भी किताबों की। आप जानते हैं, इस शिक्षा और सभ्यता के युग में किताबें खरीदकर पढ़ने वाले ढूँढे नहीं मिलते। हाँ, यदि जापानी खिलौने की दुकान होती, तो खूब चलती या यदि मैं किताबों की जगह शराब बेचता, तो भी दुकान पर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती। किन्तु अब तो यह दशा है कि सारी किताबें आलमारियों में इस तरह चुनी हुई हैं, जैसे चूने और गारे से ईंटें चुन दी जाती हैं और फिर वह अपनी जगह से नहीं हटतीं। बहुत-सी किताबें तो ऐसी हैं कि जिस तरह उन्हें पहले दिन रख दिया था, उसी तरह आज तक रक्खी हुई हैं। सिवा दीमक के, उनको कभी किसी ने नहीं पूछा। यह तो कहिए कि कभी-कभी एक आध गाहक कोकशास्त्र या कोई उपन्यास और कथा-कहानी की किताब माँगने आ जाता है, इससे दुकान का किराया भी निकल आता है; नहीं तो यह दुकान कब की खतम हो चुकी होती और मैं नहीं मालूम क्या करता होता। फिर भी व्यापार की यह दशा तो देखी नहीं जाती। कई

बार यह इरादा किया कि हटाओ इस किताबों के झगड़े को, लोग इतना पढ़ चुके हैं कि अब अधिक पढ़ना नहीं चाहते। इससे अच्छा तो यह है कि पनचक्की खोल लें या फिर सोडा-लैमनेड-बरफ़ की दुकान हो। एक-आध मित्र ने कहा कि बाइसिकल की मरम्मत में बड़ा फ़ायदा है, पर हमें इसका कोई अनुभव नहीं। एक महाशय ने राय दी कि दो लॉरियाँ खरीद कर किराए पर चलाओ, तो लखपती हो जाओगे। हमको लखपती होने से इनकार नहीं, किन्तु लॉरियाँ ख़रीदने से पहले लॉरियों के दाम जमा करने के लिये आख़िर डाका कहाँ डालें, और यदि डाका भी डालें तो फिर प्रश्न यह है कि लॉरियाँ क्यों चलाएँ, डाका ही क्या बुरा है? एक मित्र ने कहा कि सीने की मैशीन ख़रीदकर दर्ज़ी की दुकान खोल दो। अब बताइए, इन लोगों को किस तरह समझाया जाय कि दर्ज़ी-ख़ाना मैशीन से ही नहीं खुलता, वरन् उसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य दर्ज़ी का काम जानता हो। यहाँ तो यह दशा है कि सुई तक पकड़ने की तमीज़ नहीं। ख़ैर यों तो सबने अपनी-अपनी राय दी, मगर मीर साहब ने उन्हीं किताबों को ठिकाने से लगाने की वह तरकीब बताई कि मैं तो बस उछल ही पड़ा। यही किताबों का जो ढेर दिखाई देता था, सोना मालूम होने लगा। मीर साहब ने कहा कि राजा साहब यदि सब नहीं, तो आधी किताबें अवश्य ख़रीद लेंगे।

हमने कहा—"भाई, मीर साहब, तुमने तो वह तरकीब बताई है कि सूखे धानों पानी पड़ गया। मगर यह तो बताओ कि राजा साहब आख़िर इतनी किताबें क्या करेंगे, उनको क्या कोई दुकान खोलनी है?"

मीर साहब ने कहा—"फिर वही जहालत की बात। अरे भई, वह रईस हैं, राजा हैं, बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी की बड़ी बात। एक-एक किताब की दस-दस कॉपियाँ भी उनके लिये बहुत न होंगी। कुछ किताबें अपनी लाइब्रेरी में रखेंगे, कुछ इष्ट-मित्रों को बाँट देंगे, कुछ किसी मदरसे को दे देंगे और कुछ यों ही ले लेंगे। तुम एक सूची बनाकर मेरे साथ चलो तो सही।"

हमने मीर साहब के लिये पान मँगाते हुए कहा—"भाई मीर साहब मैं तो किताबों के इस कारबार से ऐसा घबरा गया था कि बस आग लगा देने को जी चाहता था, मगर तुम्हें परमेश्वर सुखी रक्खे, तुमने दोस्ती का हक़ अदा कर दिया।"

मीर साहब ने कहा—"भला कोई बात भी हो। तुमने अगर पहले से कहा होता, तो यह क़िस्सा कब का खतम हो जाता। राजा तो यह समझो, अपना ग़ुलाम है।"

हमने कहा—"क्यों नहीं। राजा को आपसे अच्छा दीवान और मिल ही कहाँ सकता है। अच्छा तो मैं आज सब किताबों की सूची तैयार कर लूँ, और कल ····

मीर साहब ने बात काटकर कहा—"हाँ, कल तुम मेरे साथ चलो। मैं राजा साहब से मिला दूँ। उसके बाद तुम जानो और तुम्हारा काम।"

मीर साहब को पान-वान खिलाकर उधर बिदा किया और इधर हमने किताबों की सूची आधी रात तक बैठकर बना डाली। दुकान में किताबें बहुत अधिक तो न थीं; किन्तु फिर भी हिसाब जो लगाया,

तो दो हज़ार रुपए की किताबें बेकार पड़ी हुई थीं, कोई इनको कौड़ियों में मोल लेने को तैयार न था। मीर साहब के लिये जी से असीस निकल रही थी कि वह इस आड़े समय में काम आए और उनकी कृपा से यह उपाय निकल आया!

दूसरे दिन मीर साहब अपने वादे पर आ गए और हम उजले-साफ़ कपड़े पहनकर राजा साहब के यहाँ पहुँच गए और मीर साहब के कहने से किताबों की सूची लेकर बड़े ध्यान से पढ़ने लगे। इस समय राजा साहब के पास उनके कुछ मुसाहब, कुछ रियासत के कारिन्दे, कुछ आसामी सभी तो बैठे थे, किन्तु मीर साहब का ऐसा प्रभाव था कि राजा साहब ने सब काम छोड़कर किताबों की सूची को पढ़ा, और आखिर मीर साहब से कहा—"फिर आप ही किताबें छाँट लीजिए।"

मीर साहब ने कहा—"मगर सरकार की मञ्ज़ूरी भी तो ज़रूरी है कि आखिर कितनी किताबें ले ली जायँ।"

राजा साहब ने कहा—"जितनी चाहे, ले लीजिए और जो चाहे कीजिए। मुझसे पूछना ही क्या?"

मीर साहब ने कहा—"तो सरकार, मैं हर किताब की पाँच-पाँच, छः-छः कॉपियाँ लिए लेता हूँ।"

राजा साहब ने कहा—"हाँ और क्या?"

राजा साहब की स्वीकृति प्राप्त करके मीर साहब ने हमको प्रणाम करने का सङ्केत किया और हर्ष के मारे मेरे जी में आया कि राजा साहब के चरणों पर गिर पड़ें। हमने अपने को वश में रखकर राजा साहब को झुककर सलाम किया। राजा साहब ने मुस्कुरा कर आदाब

का उत्तर देते हुए कहा—"दीवान जी, जितनी किताबें कहें, सब भेज दीजिए और किताबों के क़ीमत का बिल भी।"

हम वहाँ से प्रसन्न-मन बाहर निकले और बड़े प्रेम से मीर साहब का हाथ दबाकर कहा—"आपने किताबों को नहीं, मुझको ख़रीद लिया।"

मीर साहब ने कहा—"वाह साहब ! वाह साहब, वाह, यह भी कोई बड़ी बात है। अभी कल लछमन बज़ाज़ ने दो सौ जामदानी के थान इसी सरकार में बेचे हैं और कोई थान पचास रुपए से कम का नहीं है। फिर भला इन किताबों का क्या ज़िक्र, ज़्यादा-से-ज़्यादा सात-आठ सौ रुपए का होगा।"

हमने मीर साहब से कहा—"तो आप हुक्म दें कि कितनी किताबें भेज दी जायँ।"

मीर साहब ने कहा—"भाई, इसमें हुक्म की क्या बात है, जितनी चाहे भेज दो। बस यह ख़्याल रखना, सात-आठ सौ से ज़्यादा का बिल न हो।"

हमने दूसरे ही दिन ठेले पर किताबें लाद कर राजा साहब के यहाँ भेज दीं और ख़ुद आठ सौ रुपए का बिल लेकर मीर साहब के पास पहुँचे। मीर साहब ने बिल लेकर रख लिया और हमसे कह दिया, बस जाओ, अब इत्मीनान से बैठो।

हम आपसे सच कहते हैं कि एक बोझ हलका हो गया। दिल में नई-नई उमङ्गे पैदा होने लगीं कि अब इसी रक़म से चलती हुई किताबें, कुछ स्टेशनरी और कुछ स्कूली किताबें ख़रीद कर अपने चौपट कारबार को

एक बार ऐसा चलाएँगे कि सब देखते रह जायँ। न चलने वाली किताबें तो अब आराम से राजा साहब की लाइब्रेरी में रहेंगी और हमारी दूकान में सिर्फ़ वही किताबें और सामान रहेगा, जिसके ग्राहक ढूंढे नहीं जाते, वरन् जिसको ग्राहक खुद ढूँढते हैं। हमने ऐसे तमाम सामान को भी एक जगह लिख लिया, और फिर यह ख्याल करके कि राजा साहब के यहाँ से रुपया तो आता ही होगा, आखिर देर क्यों की जाय, हमने इन तमाम चीज़ों के लिये ऑर्डर भी दे दिया। दूकान के लिये कुछ नई आलमारियाँ भी बनवा लीं, इसलिये कि यह युग बाहरी आन-बान का है। जिस दूकान में बिजली की रोशनी न हो, वहाँ ग्राहक कभी नहीं जाते, इसलिये बिजलीघर को भी लिख दिया कि एक सप्ताह में बिजली लगा दी जाय। बात यह है कि हम तो अपने व्यापार को नए सिरे से जगाना चाहते थे, और यहीं एक मौक़ा ऐसा मिला था कि ज़रा सँभल जायँ; अतः हमने सब आवश्यक प्रबन्ध कर लिए और अब केवल रुपए की प्रतीक्षा थी।

एक-आध दिन तो हमने रुपए की प्रतीक्षा भी न की, वरन् यही समझते रहे, कि रुपया जैसे घर में ही मौजूद है। इसके बाद रुपया न होने का ख़्याल पैदा हुआ, और इस ख्याल के पैदा होने का कारण यह हुआ कि अब पग-पग पर रुपए की आवश्यकता थी। आलमारियाँ बनवाई थीं, अतः बढ़ई को रुपया देना था; बिजलीघर को बिजली लगाने के लिये लिखा था, तो बिजली के सामान के लिये रुपए की ज़रूरत थी; किताबों का ऑर्डर दिया था, तो उनकी बिल्टी भी आ गई थी; फिर दुकान के मालिक को जब से यह मालूम हुआ था कि इतना बड़ा सौदा हमने किया है, तो

वह अलग दो महीने का किराया माँग रहे थे, जो हम पर बाक़ी था। रुपए की कमी न थी, हाँ ज़रा देर अवश्य थी। कुछ दिन तो ख़ैर हम टालते रहे, मगर जब टालने की हद हो चुकी, तो हमने मीर साहब के घर का रास्ता लिया और उनके पास पहुँच कर घुमा-फिरा कर रुपए की आवश्यकता प्रगट की। मीर साहब ने हमको हर तरह का विश्वास दिलाया कि रुपया बस आज ही कल में मिल जायगा, इलाक़े से रुपया आने की देर है। हम फिर एक नई उमङ्ग लेकर मीर साहब के यहाँ से दुकान पर लौट आए, और अपनी भावी सफलताओं पर ख़ुशी के मारे फूले न समाते थे। बिजलीघर के मिस्त्री से कह दिया कि परसों-नरसों तक सब सामान आ जायगा। दुकान के मालिक ने किराया माँगा, तो उनको भी इतमीनान दिला दिया कि दो दिन के बाद दो महीने का किराया ले लीजिएगा। बढ़ई से कह दिया, जा परसों सब हिसाब हो जायगा। किताबों की बिल्टी को भी परसों-नरसों के लिये उठा रक्खा, और यह निश्चय कर लिया कि हमारे जीवन का दूसरा अध्याय परसों-नरसों से आरम्भ होगा!

दो दिन किसी-न-किसी तरह कट गए। अब बिजलीघर के मिस्त्री से लेकर बढ़ई तक ने तक़ाज़े शुरू कर दिए, तो हम फिर मीर साहब के यहाँ गए। मीर साहब ने हमको देखते ही कहा कि आप के काग़ज़ात राजा साहब की पेशी में है, आप ख़ुद राजा साहब के पास जाकर सलाम कर लें, तो अच्छा है। हमको तो इस वक़्त रुपया लेने के लिये राजा साहब के पास क्या, यदि परमेश्वर के यहाँ भी जाना पड़े, तो यह सोचे बिना चले जाते, कि वहाँ जाकर कोई वापस नहीं आता। राजा

साहब के यहाँ पहुँचकर हमने चोबदार से इत्तला कराई, तो मालूम हुआ कि सरकार अभी आराम कर रहे हैं। अतः बैठे रहे। एक घण्टे में मालूम नहीं कितने गाने गा डाले, कितनी सिगरेट पी गए, कितने पान चबा गए, परन्तु फिर जो पूछा, तो पता चला अभी सोकर उठे हैं और ग़ुस्लख़ाने में हैं। लीजिए साहब एक घण्टा और गाने-गुनगुनाने, ऊँघने और जँम्भाइयाँ लेने को मिला—कभी किताबों का हिसाब जेब से निकाल कर देखते थे, कभी पेंसिल से काग़ज़ पर ऊँट की तस्वीर बनाते थे, कभी मन ही मन में वह आठ सौ रुपया गिनते थे, जो आज ही मिलने वाला था और कभी आँखें बन्द करके ज़रा देर के लिये कहीं से कहीं पहुँच जाते थे। यह दूसरा घण्टा भी कठिनाई से समाप्त किया, और अब जो पूछा, तो मालूम हुआ कि सरकार नाश्ता कर रहे हैं, इसके बाद चौसर पर बैठ जायँगे। हमने एक काग़ज़ पर फ़ौरन् अपना नाम लिखा और चोबदार ने हमारा पर्चा हमको वापस देते हुए कहा—"क्या नौकरी छुड़वाइएगा मेरी ? चौसर पर जाते हुए किसकी मजाल है कि सरकार को पर्चा दे।" हमने कहा—"फिर अब मुलाक़ात कैसे होगी ?" चोबदार ने टका-सा जवाब दे दिया कि "जब चौसर की बाज़ी ख़तम हो।" दिल ने कहा कि चलो यहाँ से, परन्तु आठ सौ रुपए का ख़्याल बोल उठा कि मुझको छोड़कर कहाँ जाते हो, अतः इधर-उधर टहल कर हमने एक और चोबदार को पहले सिगरेट पिलाई, फिर पान खिलाया, इसके बाद अपना पर्चा दिया कि किसी तरह राजा साहब तक पहुँचा दो। इस चोबदार बेचारे ने हमारा पर्चा तुरन्त राजा साहब तक पहुँचा दिया और फ़ौरन् ही हमको जवाब भी मिल गया कि कल चार बजे

आओ। हम अपना-सा मुँह लेकर लौट कर आए और इस ख़याल से कि अगर दुकान पर गए, तो अभी सब मिलकर घेर लेंगे, हम सीधे घर ही आए, और यह तय कर लिया कि अब रुपया लेकर ही दुकान पर जायेंगे। दूसरे दिन चार बजे फिर राजा साहब के यहाँ पहुँचे और शुक्र है कि राजा साहब को बाहर ही बाग़ में टहलते हुए पाया। हमको देखकर राजा साहब ने कहा—"मैंने आपको कहीं देखा है, कहाँ देखा है ?"

हमने हाथ जोड़ कर कहा—"सरकार, मैं दीवानजी के साथ किताबों की फ़ेहरिस्त लेकर हाज़िर हुआ था।"

राजा साहब ने कहा—"ओहो ! आप वह हैं। अच्छा-अच्छा, अब कहिए, मैं क्या सेवा कर सकता हूँ।"

हमने कहा—"यों ही सरकार के सलाम को हाज़िर हुआ था।"

राजा साहब ने कहा—"बड़ी कृपा आपकी। और कुछ नई किताबें आएँ, तो बताइएगा, मुझको किताबों का बड़ा शौक़ है। क्या और कुछ किताबें नहीं हैं ?"

हमने कहा—"सरकार, अब मैंने नया माल मँगाया है। मैं हाज़िर करूँगा नई किताबें।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा, तो फिर मिलियेगा।"

हम सलाम करके वापस चले आये और सीधे मीर साहब के यहाँ पहुँचे। मीर साहब ने हमको देख कर पहले तो भागने का-सा प्रयत्न किया, इसके बाद कुछ उलझ कर कहा—"कहिए, आप राजा साहब से मिले ?"

हमने पूरा हाल बयान कर दिया और साथ ही साथ अपनी ज़रू-रतों का हाल भी सुना दिया कि आजकल रुपयों की कैसी सख़्त ज़रूरत है। मीर साहब ने कहा—"आपका कहना दुरुस्त है, मगर आपने भी तो ग़ज़ब कर दिया कि रुपया हाथ में आने से पहले ही सब इन्तज़ाम कर बैठे। रुपया तो एक-आध दिन में मिल ही जायगा।"

हम वहाँ से भी मुँह लटकाए हुए घर आए और घर में बन्द होकर बैठ रहे, इसलिये कि आलमारियों वाला बढ़ई, दुकान का मालिक और बिजलीघर का मिस्त्री हमारी ताक में थे। दुकान बाज़ार में बन्द थी और हम घर में बन्द किन्तु अब तक यह विश्वास था कि एक-आध दिन में रुपया मिल गया, तो दोनों खुल जायँगे। दो-तीन दिन घर में बन्द रहने के बाद हम फिर दीवानजी के यहाँ पहुँचे, मालूम हुआ कि दीवानजी इलाक़े के दौरों पर गए हुए हैं। राजा साहब के यहाँ गए, तो दो घण्टे बैठकर चले आए, इसलिये कि राजा साहब गाना सुन रहे थे। इसके बाद एकदम ख़बर आई कि आराम करने के लिये जा चुके हैं। हम भी लौट आए और फिर घर में बन्द हो गए। विपत्ति यह थी, कि अब बढ़ई ने घर का पता भी चला लिया था और वह ठहरा बढ़ई, उसके लिये दरवाज़ा तोड़ डालना भी कोई बात न थी। मगर हम भी कच्ची गोलियाँ खेलने वाले न थे, हम बाहर से ताला डालकर दूसरे दरवाज़े से घर में आ जाते थे और सारी दुनिया यह समझती थी कि घर अकेला पड़ा है। अब हमारा नियम यही हो गया कि हर दूसरे-तीसरे दिन-चोरी-छिपे घर से निकलते थे और पहले मीर साहब के यहाँ जाकर वापस होते थे और फिर राजा साहब के यहाँ से मुँह लटकाए हुए घर आकर बन्द हो जाते

थे। अब मीर साहब ने भी मिलना छोड़ दिया था और राजा साहब तो कभी स्नानागार में, कभी भोजन पर होते थे तो कभी चौसर पर, कभी गाना सुनते हुए सो जाते थे तो कभी नाच देखते हुए! यहाँ यह हाल कि बाज़ार वालों को हमारे मरने का निश्चय हो चला था और बढ़ई कोस-कोस कर खाए जाता था। बिजली का मिस्त्री तो ख़ैर थककर बैठ रहा था, पर दुकान के मालिक को दुकान खाली कराने की चिन्ता थी। हम घर में बैठे-बैठे ज़िन्दगी से आजिज़ आ चुके थे। राजा साहब को अर्ज़ियाँ दीं, दीवानजी को पत्र पर पत्र लिखे, पर कोई उत्तर नहीं। अन्ततः ठीक छः महीने के बाद एक दिन मीर साहब को हमने पकड़ लिया, और उनसे रो-रोकर जो अपना हाल बयान किया, तो मीर साहब हमें खुद लेकर राजा साहब के पास पहुँचे! राजा साहब उस समय मुजरा सुन रहे थे, मगर मीर साहब वहाँ भी पहुँच गए और थोड़ी ही देर में वापस आकर दस रुपए का एक नोट हमें देते हुए बोले—"भई, बात यह है कि इलाक़ा तो हो गया है कोरट, और इसी झगड़े में तुम्हारा हिसाब भी रह गया। अब न तो किताबें ली जा सकती हैं, न रुपया मिल सकता है। सब किताबें तुम ले जा सकते हो। तीन किताबें खो गई हैं, उनका यह मूल्य है। समझे न? भाई मजबूरी है, माफ़ करना।"

हमारा सर घूम गया। आँखों के नीचे अँधेरा छा गया, और मालूम नहीं क्योंकर गिरते-गिरते बचे। दीवानजी जा चुके थे और दस रुपए का नोट हमारे हाथ में था विश्वास कीजिए, कि चोबदार ने जिस समय सलाम करके अपना इनाम माँगा है, उस समय हम यह समझने के योग्य हो सके, कि हम राजा साहब की कोठी में खड़े हैं!

डॉक्टर समझदार आदमी हैं। आते ही नाड़ी देखी, थर्मामीटर लगाया, स्टेथस्कोप से देखा और एक लम्बा-चौड़ा नुस्खा लिख दिया। पृष्ठ—९१

राजा साहब के चोबदार ने आकर ख़बर दी, कि राजा साहब आ गए हैं, मगर आपको मोटर पर बुला रहे हैं। पृष्ठ—४६

राजा साहब की बीमारी

राजा साहब का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। प्रतिदिन के बीमार हैं, और बीमारियाँ भी ऐसी, जो राजा साहब के डॉक्टर के सिवा और किसी की समझ में नहीं आतीं। सच पूछिए, तो समझ में आएँ भी कैसे? मोटे-ताज़े, हट्टे-कट्टे, न भूख में कोई कमी, न नींद का कोई कष्ट। परन्तु राजा साहब के डॉक्टर से लेकर दवा वाले और स्वयं राजा साहब के मुसाहबों का इसी में लाभ है कि राजा साहब बीमार रहें और अपने को कभी स्वस्थ न समझें। डॉक्टर का लाभ फ़ीस का है, दवा वाले को दवाओं का दुगना-तिगुना मूल्य मिलता है, मुसाहबों की दवा वाले और

डॉक्टर साहब दोनों से कमीशन मिलता है। शेष नौकर-चाकर भी, इसलिये प्रसन्न रहते हैं, कि जिस दिन राजा साहब स्वस्थ होकर रियासत के काम में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर देंगे, उसी दिन से उनका शासन समाप्त हो जायगा। राजा साहब की बीमारी के कारण प्रत्येक नौकर अपनी जगह पर राजा है, जो चाहता है, करता है और जितना जी चाहता है, खाता है, कोई पूछने वाला नहीं। ऐसी दशा में कौन चाहेगा कि राजा साहब स्वस्थ रहें और उनके मन से बीमारी का ख्याल निकल जाय!

राजा साहब एक तो स्वयं ही रुग्ण रहते हैं, किन्तु यदि वह तनिक अच्छे भी होते हैं, तो हम लोग उनके लिये कोई-न-कोई बीमारी पैदा करके फिर उनको बीमार बना डालते हैं। जो बीमारी हम लोग बना देते हैं, वही उनको शुरू हो जाती है। अभी ख़ून की कमी की बीमारी अच्छी भी न होने पाई थी कि उनको हृदय की धड़कन आरम्भ करा दी। हृदय की धड़कन ज़रा कम हुई तो उनके मस्तिष्क में यह विचार ठूँस दिया कि आपका वज़न कम हो रहा है। वज़न बढ़ा, तो आँखों की रौशनी घटा दी। आप कहेंगे, यह सब कुछ क्योंकर होता है? अच्छा तो सुन लीजिए कि किस प्रकार ये बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं और किस सुगमता से राजा साहब प्रत्येक रोग में ग्रसित हो जाते हैं!!

राजा साहब अच्छे-भले बैठे हुए अपने शिकारी कुत्तों को देख-देखकर प्रसन्न हो रहे थे, कि सहसा उनको छींक आ गई। बस फिर क्या था, एक मुसाहब ने ज़रा मुँह बिदोर कर कहा—"यह बे-समय छींक कैसी?"

राजा साहब ने मुँह उठाकर देखा, और इससे पहले कि वह कुछ कहें, एक दूसरे मुसाहब ने घबराकर कहा—"नेत्र भी तो लाल हो रहे हैं।"

तीसरे ने कहा—"आजकल इन्फ्लूएन्ज़ा बहुत फैला है।"

अब राजा साहब ने घबरा-घबराकर एक-एक का मुँह देखना आरम्भ कर दिया और इधर किसी ने इन्फ्लूएन्ज़ा की धमकी दी, तो किसी ने नज़ला कहा, किसी ने हवा लग जाने की सम्मति दी, तो किसी ने लपककर नाड़ी देखी और ज्वर भी बता दिया। यहाँ तक कि राजा साहब को कुर्सी से उठाकर बिस्तरे पर पहुँचा दिया गया और चादर ओढ़ाकर एक आदमी को डॉक्टर साहब के पास दौड़ा दिया गया। डॉक्टर साहब समझदार आदमी हैं। आते ही नाड़ी देखी, थर्मामीटर लगाया, स्टेथसकोप से देखा और एक लम्बा-चौड़ा नुस्खा लिखकर राजा साहब से कह दिया कि तीन बार यह दवाई पी जायगी, और यह दूसरी दवाई सूँघी जायगी। तीसरी दवा जो मैंने लिख दी है, वह भी मँगाकर रख ली जायगी, यदि फिर छींक आए, तो उसे तेल की तरह सर पर लगाया जाय। डॉक्टर साहब तो अपनी फ़ीस लेकर चले गए, परन्तु अब राजा साहब को यह चिन्ता उत्पन्न हुई, कि आखिर डॉक्टर साहब ने मुझे कौन-सी बीमारी बताई है और यह अचानक मुझको क्या हो गया है, जो डॉक्टर साहब को एक ही नुस्खे में तीन-तीन दवाएँ लिखनी पड़ीं! राजा साहब ने हमसे पूछा—"आखिर डॉक्टर साहब बताते क्या हैं?"

हमने कहा—"सरकार कोई बात नहीं, एकाध दिन आराम कीजिए, तबीयत अच्छी हो जायगी।"

राजा साहब ने कहा—"फिर भी यह तो मालूम हो कि एकदम से मुझे हुआ क्या है ?"

हमने कहा—"यह तो सरकार हम लोगों को भी नहीं मालूम, किन्तु डॉक्टर साहब ने यही कहा है कि जहाँ तक हो राजा साहब बिस्तर से न उठें। खुद आपको अपनी तबीयत कैसी मालूम होती है।"

राजा साहब ने कहा—"मुझे अपनी तबीयत कुछ सुस्त तो अवश्य मालूम होती है, जैसे जी बैठा जाता हो और मस्तिष्क कुछ बेकाम-सा हो।"

हमने कहा—"परन्तु बीमारी भी क्या चीज़ होती है। एक ही घण्टे में चेहरा कुम्हला कर रह गया। महाराज के लिये डॉक्टर साहब ने बताया है कि अनार, अङ्गूर, सेब और इस प्रकार के फल जितना जी चाहे, खा सकते हैं। क्या कोई चीज़ मँगाई जाय ?"

राजा साहब ने कुछ इनकार किया, और हम लोगों ने राजा साहब की सहानुभूति में कुछ बल दिया। यहाँ तक, कि फलों से भरी हुई किश्तियाँ लगा दी गई। अब हम सबने राजा साहब को और राजा साहब ने हम सबको ज़ोर दे-देकर फल खिलाना आरम्भ कर दिया। हमने कहा—"महाराज, दो-चार अङ्गूर खा लीजिए, आखिर पेट में कुछ तो पहुँचे, नहीं तो कमज़ोरी और बढ़ेगी।"

राजा साहब ने कहा—"मगर तुम लोग भी तो खाओ।"

एक मुसाहब ने कहा—"आखिर हमारे खाने की क्या आवश्यकता है ?"

दूसरे ने पहले मुसाहब को डाँटकर कहा—"अरे यार, खाते क्यों

नहीं हो। अगर तुम्हारे खाने के कारण एकाध अङ्गूर का दाना उनके पेट में भी पहुँच जाय, तो क्या बुरा है। लो खाओ।"

अब राजा साहब ने और उनके साथ हम सबने फलों की प्लेटों पर प्लेटें चट करना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक कि सब फल थोड़ी ही देर में समाप्त कर दिए। राजा साहब ने भी पर्याप्त फल खाए थे, किन्तु हम लोगों का काम यह था कि राजा साहब के कम खाने की शिकायत करें, अतएव एक महाशय ने कहा—"फल भी तो महाराज ने नहीं खाए।"

राजा साहब ने कहा—"नहीं, मैंने तो ख़ूब खाए।"

हमने कहा—"खाए क्या सूँघे हैं। कठिनता से चार-पाँच अङ्गूर और एकाध फाँक सेब की खाई होगी।"

राजा साहब ने कहा—"ख़ैर जो कुछ मुझसे खाया गया खा लिया। अब ज़रा नींद-सी आ रही है।"

हम लोग सब हट गए और राजा साहब सो रहे। परन्तु राजा साहब के पास से आने के बाद हम सब एक ही जगह इकट्ठा होकर राजा साहब के सम्बन्ध में यह निश्चय करने को बैठे कि उनके लिये कोई ऐसी व्याधि ढूँढ़ निकालें जो भयानक भी हो और कष्टदायक भी न हो। किसी ने कहा, ख़ून का दबाव कह दो; किसी ने कहा कि कोई बड़ा-सा अङ्गरेज़ी शब्द कह दो; हमने कहा, राजा साहब को यह निश्चय करा दो कि आपको 'इन्साईक्लोपीडिया' हो गया है। परन्तु अन्त में यही निश्चय हुआ कि डॉक्टर साहब से परामर्श करना आवश्यक है, अतः हम डॉक्टर साहब के पास गए। वहाँ यह निश्चय हुआ कि राजा साहब से केवल यह कह दिया जाय कि आप के गुरदे ख़राब हैं, इसी-

लिये बार-बार आप बीमार हो जाते हैं डॉक्टर साहब के यहाँ से लौटने पर मालूम हुआ कि राजा साहब जाग उठे हैं और सब लोग उन्हीं के पास हैं, अतः हम भी वहीं पहुँचे। हमको देखते ही राजा साहब ने पूछा—"क्या डॉक्टर साहब के पास गए थे ?"

हमने तनिक शोक और चिन्ता के भाग से गरदन झुकाकर कहा—"जी हाँ, डॉक्टर साहब के पास भी पूछने गया था कि महाराज को यह क्या हो गया है कि दो दिन भी स्वस्थ रहने नहीं पाते।"

राजा साहब ने कहा—"तो फिर डॉक्टर ने क्या बताया ?"

हमने कहा—"कुछ नहीं महाराज, यही कहा कि अच्छे हो जायँगे।"

राजा साहब ने बल देते हुए कहा—तुम्हें मेरी सौगन्द है, बताओ तो सही कि क्या कहा है ?"

हमने कहा—"आप तो अब सौगन्द दे रहे हैं। बात यह है कि डॉक्टर साहब ने कहा है कि गुरदे ख़राब हैं, उनके कारण रोज़ कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती है अब आज मालूम यह होता है, कि किसी गुरदे में हवा लग गई, बस छींकें आने लगीं।"

राजा साहब ने मुँह बनाकर कहा—"ठीक कहा है, डॉक्टर साहब ने ! मुझे स्वयं गुरदों की ख़राबी का सन्देह था। आज बात यह हुई, कि गद्देदार कुरसी के स्थान पर सादी कुरसी पर बैठ गया। उसके छिद्रों से हवा आ रही थी, वही गुरदे में लगी होगी।"

हमने कहा—"किन्तु महाराज, गुरदों को तो ठीक होना चाहिए। मैंने तो आज डॉक्टर साहब से कहा, कि मेरे गुरदे निकाल कर मेरे महा-

राज के लगा दीजिए !! किसी प्रकार वह अच्छे तो हो जायँ; मैं यदि बीमार हो जाऊँ; तो बला से।"

राजा साहब ने कहा—"यह भी एक ही रही। तुम्हारे प्रेम के लिए धन्यवाद। परन्तु यह कैसे हो सकता है ?"

इतने में चपरासी ने आकर सूचना दी कि रायबहादुर साहब आए हैं और सरकार का मिज़ाज पूछ रहे हैं। राय बहादुर साहब राजा साहब के बड़े मित्र हैं और बड़े सूझ-बूझ के मनुष्य हैं। हाकिमों में बड़ा प्रभाव है और उन्हें सब लोग बहुत मानते हैं। राजा साहब ने उन्हें देखकर उठने का प्रयत्न किया, तो हम लोगों ने सहारा दिया। परन्तु रायबहादुर साहब ने आते ही कहा—"देखिए राजा साहब, यदि आप उठे तो मैं अभी चला जाऊँगा।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा भाई, तुम न जाओ, मैं अब न उठूँगा। बैठो मेरे पास, कुर्सी ले लो।"

रायबहादुर साहब ने बैठते हुए कहा—"क्या बात है, आख़िर कैसी तबीयत है ? रात तक तो आप अच्छे थे।"

राजा साहब ने कहा—"जी हाँ रात तक तो क्या, सवेरे तक अच्छा था। कोई दस बजे होंगे, कि एक दम गुरदे में हवा लग गई और छींके आने लगीं।"

रायबहादुर साहब ने आश्चर्य से कहा—"गुरदे में हवा लग गई ?"

राजा साहब ने कहा—जी हाँ, मेरे गुरदे ख़राब हैं। इन्हीं के कारण कभी नज़ला होता है, कभी ज़ुकाम !"

रायबहादुर साहब ने और भी आश्चर्य से कहा—"गुरदे के कारण नज़ला हो जाता है और ज़ुकाम ?"

राजा साहब ने कहा—"जी हाँ, तो गुरदे में जो हवा लगी है, तो पहले छींकें आईं; फिर आँखें लाल हो गईं और उसके बाद ज्वर आ गया। बात यह है कि गुरदे ही ख़राब हो गए हैं।"

रायबहादुर साहब पागलों की तरह राजा साहब का मुंह देख रहे थे और हम को रायबहादुर पर क्रोध आ रहा था, कि आख़िर इसको इससे क्या प्रयोजन कि गुरदे में हवा लग सकती है या नहीं और गुरदे से नज़ला-ज़ुकाम हो सकता है या नहीं ! ऐसा न हो, कि यह कमबख़्त बना-बनाया खेल बिगाड़ दे। अन्तता यही हुआ कि इन महाशय ने अपनी योग्यता दिखाते हुए कहा—"किन्तु राजा साहब, के गुरदे में हवा कैसे लग सकती है, और गुरदे को नज़ला-ज़ुकाम से क्या मतलब ?"

हम लोग दाँत पीसकर रह गए। किन्तु राजा साहब ने स्वयं ही कहा—"भाई ये बातें हमारी-तुम्हारी समझ की नहीं होतीं। न मैं डॉक्टर, न तुम। यह डॉक्टर ने बताया है और वह हम दोनों से अधिक इस बात को समझता है। हाँ इतना मैं भी जानता हूँ, कि गुरदे ख़राब अवश्य हैं, इसलिए कि जब देखिये नज़ला मौजूद रहता है !"

रायबहादुर साहब ने कहा—"किन्तु राजा साहब, गुरदों के कारण नज़ला होने की यह पहली शिकायत मैं सुन रहा हूं।"

राजा साहब कुछ कहना ही चाहते थे, कि हमने कहा—"हुज़ूर,

डॉक्टर साहब ने यह भी कह दिया है, कि जहाँ तक हो कम बोलें और और लोगों से मिलें-जुलें भी कम।"

रायबहादुर साहब फ़ौरन खड़े हो गए और राजा साहब ने भी डॉक्टर साहब के आदेश से विवश होकर उनको रोकना उचित न समझा! रायबहादुर साहब के जाने के बाद, देर तक, यही चर्चा होती रही कि यह रायबहादुर हर बात में अपनी टाँग अड़ाता है। डॉक्टरी में भी अपनी रायबहादुरी जताने चला है, कि गुरदे में हवा नहीं लग सकती और गुरदे के कारण नज़ला नहीं हो सकता!!

राजा साहब ने कहा—"अरे भाई वह बेचारा क्या जाने। न डॉक्टर न वैद्य। हाँ, यह बात है कि हर बात में दख़ल ज़रूर देता है। अच्छा ख़ैर, इस चर्चे को छोड़ो और यह बताओ, कि अगर मैं सिविल सर्जन को बुलाकर दिखाऊँ, तो क्या हरज है?"

हमने जल्दी से कहा—"महाराज, कहीं ऐसा कीजिएगा भी नहीं। हमारे डॉक्टर साहब आपको अच्छी तरह समझे हुए हैं, आरम्भ से चिकित्सा करते आए हैं, सिविल सर्जन बिलकुल नया डॉक्टर होगा। दूसरे मैं तो कहूँगा कि भगवान ही सिविल सर्जनों से बचाये, मेरे पिता को गुरदों की शिकायत थी, एक डॉक्टर की चिकित्सा थी, किन्तु मैंने ही सिविल सर्जन को घबराकर बुला लिया। बस, फिर क्या था, सिविल सर्जन ने जो दवा दी है, तो एक-एक गुरदा सूजकर दो-दो सेर का हो गया और भगवान आपको सलामत रक्खे, वह फिर न बचे।"

राजा साहब ने झुर-झुरी लेकर कहा—"अच्छा भाई छोड़ो इस चर्चा को, हमारा डॉक्टर ही अच्छा।"

इतने में राजा साहब के पास स्त्रियाँ आ गईं और हम लोग बाहर निकल आये !

अब हम लोग यही प्रयत्न करते हैं, कि राजा साहब के पास कोई बाहर का आदमी जाने न पाए और वह हम लोगों की राय और डॉक्टर के संकेतों पर जब तक हम चाहें, बीमार पड़े रहें!!

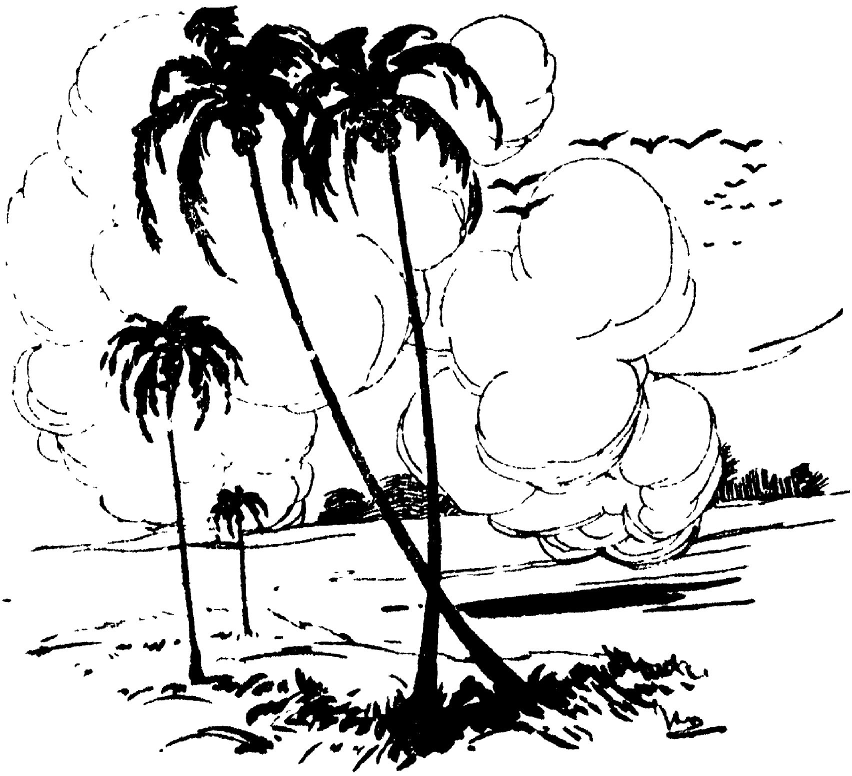

राजा साहब की लड़की की शादी

उनके भी दाढ़ी थी और उनके भी।' खिज़ाब यह भी लगाते थे और वे भी। चेहरे पर झुर्रियाँ इनके भी थीं और उनके भी। मुँह में नक़ली दाँत उनके भी। कहने का मतलब यह, कि दोनों के बारे में यह बतलाना मुश्किल था, कि उमर में नवाब साहब बड़े हैं, या राजा साहब? यदि दोनों में छुटाई-बड़ाई होगी भी, तो एक-आध साल से ज़्यादा न होगी। और यही वजह है, कि दोनों पड़ोसियों में खूब छनती थी। हर वक़्त साथ का उठना-बैठना, खाना-पीना और दिन रात शतरञ्ज और चौसर की बाज़ियाँ। बस, यह मालूम होता था, कि जिस तरह यह दोनों ज़िन्दगी के दिन व्यतीत कर रहे हैं, इसी तरह एक-एक हिचकी भी दोनों को साथ आएगी और दोनों इस दुनिया से साथ ही साथ रुखसत भी होंगे। मगर इस बुढ़ापे के होते हुए भी दोनों के दिल ऐसे जवान थे, कि क्या किसी जवान के होंगे। नाच-रङ्ग की महफ़िलें अब गर्म होती थीं। तिरछी नज़रों के वार अब भी उनके दिलों पर पड़ते थे और हसीन औरतों को अब भी दोनों ऐनक लगा-लगाकर

घूरते थे—खैर, यहाँ तक तो हर रईस कर सकता है। मगर नवाब साहब ने तो कमाल ही कर दिया, कि एक दिन अपने दोस्त राजा साहब की खिदमत में उनकी १५ साल की लड़की से अपनी शादी का पैग़ाम भेजा, हालाँकि इस लड़की का अगर हक़ पहुँचता था, तो नवाब साहब के लड़के के साथ। जो बाईस साल का एक खूबसूरत नौजवान था। मगर नवाब साहब अपनी जवानी के मुक़ाबले में अपने लड़के की जवानी का कब ख़्याल करते? नतीजा यही हुआ, कि उसके हक़ पर भी डाका डाल दिया। कोई समझदार आदमी होता तो नवाब साहब की इस बदतमीज़ी पर आग-बबूला हो जाता। मगर राजा साहब भी पुश्तों से ताल्लुक़ेदार चले आ रहे थे। आखिर कहाँ तक समझदारी उनका साथ दे सकती थी? शादी के इस पैग़ाम को देखकर बाग़-बाग़ हो गए और खत लिए हुए सीधे रानी साहिबा के पास पहुँचे और उनको अलग बुलाकर यह खुशखबरी सुनाई, कि नवाब साहब के जैसा रईस उनकी लड़की के लिये किस तरह व्याकुल होकर मिन्नत कर रहा है—रानी साहिबा बेचारी एक ताल्लुक़ेदार न थीं! लिहाज़ा कुछ न कुछ अक़्ल उनके पास ज़रूर थी। वह इस पैग़ाम को सुनकर सन्नाटे में आ गईं और तअज्जुब से कहा—"क्या नवाब साहब ने खुद अपने लिये पैग़ाम भेजा है?"

राजा साहब ने बदतमीज़ी से हँसकर कहा—"हाँ रानी साहिबा, और नहीं तो क्या किसी और के लिये!"

रानी साहिबा ने कहा—"यह क्या बेअदबी है इस खूँसट की, मैं तो समझती थी, कि अपने लड़के के लिये लिखा होगा।"

राजा साहब ने तआज्जुब से कहा—"लड़के के लिये ? भई रानी, तुम तो कमाल ही करती हो—लड़का फिर लड़का ही है, वह अभी ताल्लुक़ेदार नहीं है—दूसरे, नवाब में जो बात है, वह उनके लड़के में कहाँ ?"

रानी साहिबा ने बिगड़ कर कहा—"अच्छा तो यह कहो, कि तुम ख़ुद इस पैग़ाम को पसन्द कर रहे हो कि मेरी लाड़ली को दुलहा की जगह दूल्हा का बाप मिले और शादी की जगह उसकी टूटी हुई क़ब्र में ढकेल दिया जाय।"

राजा साहब ने तआज्जुब से कहा—"अमाँ, यह क्या कहा रानी तुमने, नवाब की उम्र ऐसी कुछ ज़्यादा तो नहीं है—बस मेरे ही लगभग होगी—अगर मैं टूटी क़ब्र हूँ, तो वे भी होंगे।"

रानी साहिबा ने बनाते हुए कहा—"अरे ! और क्या तुम अभी बच्चे ही हो !—मैं कहती हूँ, कि आख़िर तुमको हो क्या गया है—मैं तो इस मुए लङ्गूर को अपनी लाड़ली का दुलहा न बनने दूँगी।"

राजा साहब ने कहा—"रानी, ऐसा लड़का—।"

रानी साहिबा ने बात काट कर कहा—"लड़का—वह मुआ लड़का है—आख़िर तुम मेरी मासूम बच्ची को बेमौत मारना क्यों चाहते हो ?"

राजा साहब ने समझाते हुए कहा—"रानी, ज़रा ग़ौर करो, कि दो तआल्लुक़े मिलकर कितनी बड़ी रियासत हो जायगी और हमारी लाड़ली कितने बड़े तआल्लुक़े की रानी कहलाएगी ?"

रानी साहिबा ने कहा—"आग लगे ऐसे तआल्लुक़े को और झाड़ू

फिर ऐसी रानी कहलाने पर—मैं कहती हूँ, कि आखिर तुम बार-बार इस शादी का जिक्र ही क्यों करते हो—मैं तुम्हारी जगह होती, तो इस खत को फाड़ कर उस मुए नवाब के मुँह पर मारती।"

राजा साहब ने कहा—"रानी, तुम घर में बैठने वाली औरत हो। तुमको नहीं मालूम कि नवाब किस पोजीशन का आदमी है।"

रानी साहिबा ने बिगड़कर कहा—"अच्छा तो तुम्हारी लड़की है, तो तुमको अधिकार है। ज़िन्दा रहने दो या गला घोंट दो।"

राजा साहब को भी यही फ़िक्र थी, कि दो तअल्लुके मिलकर बहुत बड़ी रियासत हो सकती है और नवाब साहब भी राजा साहब के तअल्लुके पर दाँत लगाये हुये थे। अगर यह दोनों तअल्लुकेदार न होते, तो इनके दिमाग़ में यह बात आ सकती थी कि नवाब साहब के लड़के की शादी राजा साहब की लड़की से कर दी जाने पर भी यह दोनों तअल्लुके मिलकर एक हो सकते हैं। लेकिन, इतनी बात समझने के लायक़ होते, तो तअल्लुकेदार ही क्यों कहलाते? बहर-हाल राजा साहब अपनी जगह पर राज़ी थे और नवाब साहब को जल्दी थी, कि किसी तरह राजा साहब इस पैग़ाम को मन्ज़ूर कर लें। आखिर नवाब साहब ने यह तय कर लिया कि खुद ही राजा साहब से ज़बानी बातचीत करके मामला तय कर ले। खैर, अब तक तो कोई बात न थी! जिस तरह घर में बैठे होते थे, एक दूसरे के यहाँ चले जाते थे; मगर अब मामला दूसरा था। नवाब साहब को राजा साहब के यहाँ ससुराल समझकर जाना था; और आप जानते हैं, कि ससुराल जाने के लिये एक दामाद को क्या-क्या तैयारियाँ करनी पड़ती हैं? दिन भर खिज़ाब लगाया गया—

और शाम को नहा-धोकर नवाब साहब ने क़ीमती जोड़ा इतर में बसाकर पहना—सुर्मा लगाया—कङ्घी की और बाल-बाल में मोती पिरोए गए, ताकि राजा साहब देखते ही उनको अपना दामाद बना लें—इस शान से जिसवक़्त नवाब साहब, हमारे राजा साहब के पास पहुँचे हैं, तो राजा साहब बैठे चौसर खेल रहे थे—नवाब साहब ने जाते ही बजाय, बराबरी का मज़ाक़ करने के, बहुत अदब के साथ राजा साहब को सलाम किया और राजा साहब ने भी, दोस्ती का ख़्याल छोड़कर, अपने बराबर के इस बुड्ढे से कहा—"जीते रहो।"

नवाब साहब अदब से बैठ गए और राजा साहब ने चौसर उठा दी। हम सब भी एक तरफ़ बैठ गए। ख़ैर! हम लोगों को यह बात मालूम हो ही चुकी थी, कि नवाब पर पागलपन सवार है और उन्होंने राजा साहब की लड़की के साथ शादी का पैग़ाम भेजा है, मगर यह नहीं मालूम था कि पैग़ाम देते ही ये दोनों लँगोटिए यार एक दूसरे के लिए ऐसे छोटे और बड़े हो जायँगे, कि वह अदब से झुक कर सलाम करे और वह इस बुड्ढे को "जीते रहो" कहे! यह तमाशा देखकर हमको बड़ी हँसी आई, मगर हम अपनी हँसी को पी गए और इन दोनों बुड्ढों के पागलपन का तमाशा देखने लगे! राजा साहब ने बड़े प्यार से नवाब साहब की तरफ़ देख कर कहा—"आराम से बैठो मियाँ।"

नवाब साहब ने हाथ जोड़ कर कहा—"जी हाँ, मैं बहुत आराम से बैठा हूँ।"

राजा साहब ने हुक़्क़ा बढ़ाते हुए कहा—"लो बेटे, हुक़्क़ा पिओ!" उस समय हम लोगों के लिए हँसी का रोकना कोई मामूली बात न थी,

कि राजा साहब अपने एक बराबर के बुड्ढे को, जिसके, न मुँह में दाँत—न पेट में आँतें—बेटा कहें। मगर क्या करें, हँसने का मौक़ा न था। अभी कल तक एक दूसरे को निहायत बेतकल्लुफ़ी के साथ राजा और नवाब कहते थे। मगर आज राजा साहब उनको बेटा कह रहे थे और वे ईर्सा में खुश थे! नवाब साहब ने हाथ जोड़ कर कहा—"हुज़ूर, मैंने तो हुक़्क़ा पीना छोड़ दिया है, दूसरे आपके सामने ऐसी बदतमीज़ी मुझसे नहीं हो सकती।"

राजा साहब ने कहा—"यह बात तुमने बिल्कुल मेरी ही ऐसी कही। एक दफ़ा का ज़िक्र है कि भाई साहब (याने तुम्हारे वालिद साहब) अपने ज़नानख़ाने में बैठे हुए थे, कि मैं पहुँच गया। मुझसे बड़ी मुहब्बत करते थे। अपने पास बुलाकर बैठा लिया और मुझको हुक़्क़ा पीने को दिया, तो मैंने भी यही कहा, कि मुझसे आपके सामने यह बेअदबी नहीं हो सकती।" यह सुनकर बहुत खुश हुए मेरे सर पर हाथ फेर कर बोले कि मियाँ इन बातों में क्या रक्खा है। मेरे सामने हुक़्क़ा पीकर तुम मुझसे बड़े तो हो नहीं सकते! रहोगे वही, जो अब हो!! मैं यह सुनकर क्या जवाब देता। चुप हो गया और आख़िर भाई साहब ने अपने सामने हुक़्क़ा पिलाकर छोड़ा!"

नवाब साहब हँसकर चुप हो गए! तो मैंने कहा—"सरकार, यह मौक़ा बदला लेने का अच्छा है, अब आप भी नवाब साहब को हुक़्क़ा पिलाकर ही छोड़ें।"

राजा साहब ने कहा—"हाँ-हाँ, इनको ज़रूर पीना चाहिए।"

नवाब साहब ने कहा—"मैं तो वाक़ई आपका भतीजा हूँ। अब्बा

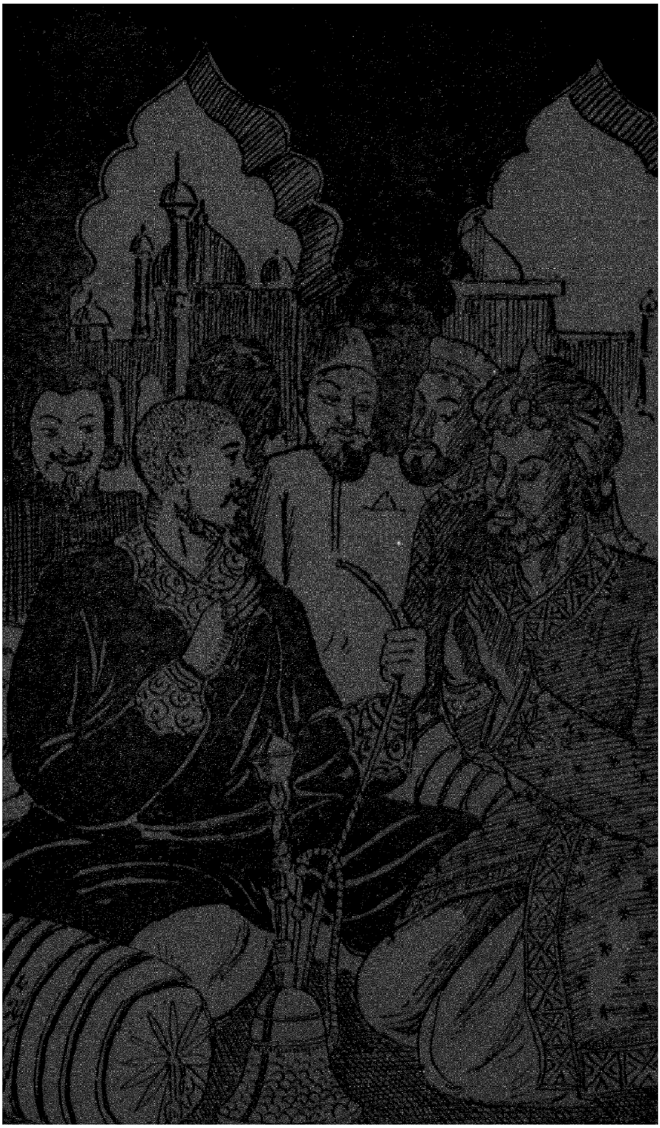

राजा साहब ने हुक्का बढ़ाते हुए कहा—"लो बेटे, हुक्का पियो !"

पृष्ठ—११५

जान आपको अपना सगा भाई समझते थे। अगर आपका यही हुक्म है, तो मैं हुक्का पीता हूँ। बड़ों का हुक्म टालना भी बदतमीज़ी है।"

राजा साहब ने हँस कर कहा—"अब आए तुम रास्ते पर और लो यह ख़ासदान है—पान खाओ।"

नवाब साहब ने पान खा कर सलाम किया और हुक्का पीते हुए कहा—"हुज़ूर के पास मैंने एक ख़त भेजा था।"

राजा साहब ने कहा—"हाँ मियाँ, वह पहुँचा। तुम जानते हो कि मेरे लिए इससे बढ़ कर ख़ुशी की बात और क्या हो सकती है कि मेरे कलेजे के दो टुकड़े आपस में मिल जावें। मगर ज़रा तुम्हारी चची को राज़ी करना है।"

नवाब साहब ने अपने दाँतों की प्लेट से पान की सुपारी निकालते हुए कहा—"तो क्या चचीजान को इस में इनकार हो सकता है?"

राजा साहब ने कहा—"बेटा, बात यह है कि औरतों को सीधी-सी बात भी ज़रा घुमा-फिराकर समझाई जाती है। अब उनको तो यह नहीं मालूम कि नज़ले की वजह से तुम्हारे बाल सफ़ेद हो गए हैं और तुम ख़िज़ाब लगाने लगे; या पायरिया की वजह से तुमने दाँत निकलवा कर नक़ली दाँतों की प्लेट लगवा ली। वह तो यही कहती हैं कि उम्र ज़्यादा है।"

नवाब साहब ने कहा—"ताज्जुब है कि चचीजान का ऐसा ख़्याल है, वरना आप तो जानते हैं कि—"

राजा साहब ने बात काटकर कहा—"अरे मियाँ, तुम मुझको क्या समझ रहे हो। मैंने तो तुमको गोदी में खिलाया है और मैं ख़ुद जानता

हूँ कि तुम्हारी उम्र क्या है। अगर क़ुसूर है, तो लड़की का है कि अभी वह बहुत छोटी है।"

नवाब साहब ने कहा—'तो क्या मैं उम्मीद करूँ कि आप चची-जान को समझा कर इस क़िस्से को तय करा देंगे?"

राजा साहब ने गिलौरी खाते हुए कहा—"जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, मैं कोई कसर उठा न रक्खूँगा।" इसके बाद थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके नवाब साहब चले गए और राजा साहब भी महल में रानी साहिबा को समझाने के लिये रवाना हो गए।

इसमें शक नहीं कि राजा साहब के यहाँ रहते-रहते हम लोगों को सिर्फ़ रुपया बनाना आया था और हम हर मौक़े पर सिर्फ़ रुपया ही बनाने की फ़िक्र करते थे। यह मौक़ा भी ऐसा ही था, कि नवाब साहब से जितना रुपया हम लोग चाहते वसूल कर लेते। मगर अभी तक रुपए की लालच ने हमको जानवर नहीं बनाया था और हममें अभी इतनी इनसानियत बाक़ी थी कि राजा साहब की कम उम्र लड़की पर हम सब को तरस आ रहा था कि वह बेचारी इस अन्धे कुएँ में ढकेली जा रही है! बुड्ढे नवाब का हाल यह था कि अगर ठण्डे पानी का एक गिलास पिला दिया जाय तो मर जाय। इस उम्र के घोड़े को गोली मार दी जाती है और इस उम्र के आदमी घर बसाने से ज़्यादा क़ब्र बसाने और दूसरी दुनिया में जाने की फ़िक्र करते हैं। राजा साहब की लड़की अभी बच्ची ही थी, इस बुड्ढे नवाब की पोती के बराबर। उसकी शादी इस खूसट के साथ शादी नहीं, बल्कि उसकी बरबादी थी। इस-

लिए हम सब ने मिल कर तय कर लिया कि इधर की दुनिया उधर हो जाय, मगर नवाब साहब के साथ इस लड़की की शादी न होने देंगे। रानी साहिबा से हम लोग चुपके-चुपके मशविरे करते थे और उनको तमाम ख़बरें पहुँचाते थे। राजा साहब के यहाँ शादी की तैयारियाँ हो रही थीं और उससे भी ज़्यादा ज़ोर के साथ नवाब साहब के यहाँ तैयारियाँ थीं। मगर अब हम लोग भी एक बात तय करके चुप थे, बल्कि इन तैयारियों में ख़ुद भी हिस्सा ले रहे थे। नवाब साहब का लड़का पहले तो अपने बाप की इस शादी का बड़ा मुख़ालिफ़ था, मगर हम लोगों से मिलने के बाद वह भी इतमीनान से अपने बाप की शादी की तैयारियों में मसरूफ़ हो गया था। यहाँ तक कि शादी का दिन आ गया और इन दोनों ताल्लुक़ेदारों के महलों में चहल-पहल शुरू हो गई। शाम को ६ बजे बारात आने वाली थी। इसलिए राजा साहब ठीक ५ बजे ग़ुस्लख़ाने में तशरीफ़ ले गए। और यहाँ हम लोगों ने अपनी स्कीम के मुताबिक़ ग़ुसलख़ाने में ताला लगा कर नवाब-साहब के लिये मोटर भेज दी कि आप फ़ौरन् आ जायँ। मोटर वाला हमारी साज़िश में शरीक था और रानी साहिबा उसको पहले ही इनाम देकर सब समझा चुकी थीं। वह नवाब साहब को लेकर शहर से कोसों दूर निकल गया और नवाब साहब के लड़के को दूसरी मोटर भेज कर राजा साहब के यहाँ बुला लिया गया। ठीक वक़्त पर राजा साहब की लड़की की शादी हुई। मगर नवाब साहब के साथ नहीं, बल्कि उनके लड़के के साथ। और जब वह लड़की को रुख़सत कराके ले गए, उस वक़्त ख़ुद रानी साहिबा ने राजा साहब को ग़ुस्लख़ाने से निकाला। हम सब

रफ़ूचक्कर हो चुके थे और राजा साहब हम में से हरेक के ख़ून के प्यासे थे। १५ दिन तक हम लोगों का सामना नहीं हुआ। वह तो कहिए कि १६वें दिन नवाब साहब का इन्तक़ाल हो गया। तो हम सब राजा साहब के पास आए और उनको समझाया कि हमने उनकी लड़की को बेवा बनने से बचाने के लिए यह सब कुछ किया था। यह बात राजा साहब की समझ में पहले नहीं आ सकती थी। मगर अब नवाब साहब का लड़का ख़ुद नवाब था और दो बड़े ताल्लुक़े मिल कर एक हो गए थे। इसलिए राजा साहब को हममें से किसी से कोई शिकायत नहीं थी, बल्कि वह दिल से ख़ुश थे पर ज़बान से कुछ नहीं कहते थे। रह गया हम लोगों का माली फ़ायदा, वह इस सूरत में भी हुआ। राजा साहब के हाथ से न सही, रानी साहिबा के हाथ से ही सही।

राजा साहब के मैनेजर

हम राजा साहब के यहाँ पहुँचे, तो देखते क्या हैं, कि एक साहब बहुत डबल साइज़ के, अधेड़ उम्र, ख़िज़ाब से सफ़ेद दाढ़ी को काला किए हुए बैठे हैं, और नाक की नोक पर लगी हुई ऐनक से कुछ काग़ज़ उलट-पलट कर इधर-उधर से देख रहे हैं। राजा साहब उनके सामने इस तरह बैठे हुए थे, जैसे गुरु जी के सामने कोई चेला पहिले-पहिल आय। हमको देखते ही राजा साहब ने रोज़ की तरह कहा—"आइए, आइए! अब तो जब तक आपको बुलाया न जाय, आते ही नहीं! देखिए, आपसे मिलिए। खान बहादुर एवज़ अली साहब हैं। आपने आज इस रियासत की मैनेजरी का चार्ज ले लिया है।"

मैनेजर साहब ने सर से ले कर पैर तक हमको देखा, और हमने मैनेजर साहब की डरावनी सूरत से कुछ सहम कर जल्दी से उनको सलाम कर लिया, कि कहीं यह झपट न पड़ें! मैनेजर साहब ने सलाम का जवाब तो ख़ैर दे दिया, मगर वह इस वक़्त इस बुरी तरह हाँफ़ रहे थे, जैसे बहुत दिनों के बाद हम उनको मिले थे, और अब वह

हमको दबोच कर भोजन करने ही वाले थे ! आखिर कुछ देर के बाद मोटी-सी आवाज़ में बोले—"आप कहाँ मुलाज़िम हैं ?"

देखी आपने बदतमीज़ी ! गोया राजा साहब की दोस्ती हमारे लिए कुछ कम थी, जो हम नौकरी भी करते-फिरते। मगर खैर, इस वक्त तो कुछ जवाब देना ही था। इसलिए हमने ज़रा अपनी बग़लें झाँकते हुए कहा—"जी, मैं मुलाज़िम तो खैर कहीं नहीं हूँ, मगर हुज़ूर राजा साहब के दरबारियों में समझ लीजिए।" राजा साहब ने बात काट कर कहा—"आप मेरे पुराने मिलने वालों में हैं, और मेरे दो-एक दोस्तों में गोया एक यह भी हैं। मुझको जो भरोसा इन पर है, वह किसी पर नहीं।" यह सुन कर मैनेजर साहब ने फिर हमारी तरफ़ घूरना शुरू कर दिया। शायद उस वक्त उनको भूख लग रही थी; मगर न जाने क्या समझ कर रहम खा गए और कहने लगे—"तो इसका मतलब यह हुआ, कि बस, आप राजा साहब बहादुर के दोस्त हैं और कोई काम नहीं करते।" यह कह कर वह तो लगा हमको घूरने, और हम कुछ सोच रहे थे, कि इतने में मिरज़ा जी को देख कर ज़रा जान में जान आई ! मिरज़ा जी का आना, इसलिए और भी अच्छा हुआ, कि वह देव, जिसको राजा साहब ने मैनेजर समझ कर नौकर रक्खा था, अब मिरज़ा जी की तरफ़ मुतवज्जह हो गया। राजा साहब ने जिस तरह हमको इन हज़रत से मिलाया था, उसी तरह मिरज़ा जी को भी मिला दिया; और हमने मिरज़ा जी के चेहरे के उतार-चढ़ाव से यह बात समझ ली, कि वह भी इस रावण से कुछ डरे हुए-से हैं। उसने जो सवाल नौकरी-वौकरी के हमसे किए थे, वही मिरज़ा जी से भी किए और उसके बाद हम दोनों को हमारे

हाल पर छोड़ कर फिर कागज़ों को उलटने-पलटने लगा। हम दोनों साँस रोके हुए बैठे थे, और राजा साहब भी बहुत अदब के साथ अपने मैनेजर के सामने चुपके बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे, कि इतने में फिर उसकी गरजदार आवाज़ आई। राजा साहब से कहने लगा —"राजा साहब, यों तो तमाम ख़र्च आपके यहाँ के बहुत ज़्यादा हैं, मगर मोटरों पर जो ख़र्च हो रहा है, वह हवाई जहाज़ों के ख़र्च के बराबर है। आपके लिए बस सवारी में एक मोटर काफ़ी है। बाक़ी यह चार-चार मोटरें बेकार ही तो चल रही हैं। राजा साहब ने कहा—"मैं तो आपको पहिले ही सारे अख़्तियार दे चुका हूँ, जो जी चाहे कीजिए!" यह सुन कर मिरज़ा जी ने हमें देख कर मुँह चिढ़ाया, जिसका मतलब यह था, कि यह तो बुरा हुआ, और हमने मिरज़ा जी को देख कर आँख मारी, जिसका मतलब यह था, कि बैठे तो रहो, देखो होता क्या है। हम दोनों एक-दूसरे का मतलब समझ गए। इतने में मैनेजर साहब फिर चिल्लाए—"यह डालियों वग़ैरह का हिसाब तो बहुत है। बहुत ही ज़्यादा फ़िज़ूल-ख़र्ची है, और इसमे कोई ख़ास फ़ायदा भी तो नहीं होता! मैं इस ख़र्च को बिलकुल बन्द करना चाहता हूँ। यह किन साहब के दस्तख़त हैं, जिनके हाथों यह ख़र्च हुआ?" मिरज़ा जी का इरादा हुआ, कि जूते छोड़ कर भागें, मगर राजा साहब उनकी तरफ़ इशारा करके बता चुके थे, कि हमारे दोस्त मिरज़ा जी ने एक-एक पाई ख़ुद ख़र्च की है, और किसी नौकर को हाथ तक लगाने नहीं दिया।" मैनेजर साहब ने मिरज़ा जी को खा जाने वाली नज़रों से देख कर बड़ी ज़ोर से कहा—"हूँ, हूँ!" इसके बाद वह कुछ सोचते रहे,

और मिरज़ा जी को बुख़ार चढ़ता रहा ; मगर हमने अब यहीं अच्छा समझा, कि इस वक़्त यहाँ से खिसकना ही ठीक है, वरना नहीं मालूम मिरज़ा जी क्या कह बैठें, या यह मैनेजर कोई ऐसा-वैसा क़िस्सा खड़ा कर दे। हालाँकि डरे वह, जो बेईमान हो, मगर मालूम नहीं क्यों, इस वक़्त दिल कुछ हमारा भी धड़क रहा था। इसलिए हमने राजा साहब से कहा—"इस वक़्त सरकार इस हिसाब-किताब में लगे हुए हैं, हम लोग फिर किसी वक़्त हाज़िर होंगे।" राजा साहब शायद हम लोगों को रोकना चाहते, मगर मैनेजर साहब की तरफ़ देख कर बोले—"अच्छा तो फिर आना ज़रूर। मैं तो आज ही इन झञ्झटों से छुटकारा पा लूँगा, फिर मैनेजर साहब जानें इनका और काम।"

मैनेजर साहब ने हम दोनों को फिर घूरा। मगर हम दोनों राजा साहब को, और फिर डर के मारे उनको भी सलाम करके अपनी जान बचा कर भागे वहाँ से! बुरा हाल तो ख़ैर हमारा भी था, मगर मिरज़ा जी बहुत ही घबराए हुए थे। कुछ देर तक तो वह मुँह से बोले ही नहीं। आख़िर जब ख़ुद हमने उनको छेड़ा, कि "क्यों भई मिरज़ा जी, अब क्या कहते हो", तो बहुत गहरी फ़िक्र के अन्दाज़ से बोले—"यार यह तो बहुत बुरा हुआ, यह आदमी बड़ा घाघ मालूम होता है, और अब हम लोगों की दाल न गलने देगा!"

बात तो हम भी यही सोच रहे थे, मगर इस वक़्त मिरज़ा जी को ढाढ़स बँधाना भी ज़रूरी था, इसलिए बनावटी हँसी हँस कर हमने कहा—"कैसी बातें करते हो मिरज़ा! ऐसे-ऐसे बहुत से मैनेजर देखे हैं। अगर यह हम लोगों से बिगाड़ कर रहना चाहेगा, तो यह समझ लो,

इसी तलवार से राजा पोरस ने साठ हाथियों की सूँड़ें काटी थीं और सिकन्दर ने इस तलवार को लेकर अपने सिर पर रक्खा था !

पृष्ठ—४२

कि दो ही दिन में सर पर पैर रख कर भागेगा !" मिरज़ा जी ने डरावना चेहरा बना कर और आँखें निकाल कर कहा—"अरे, बड़ा खुर्राट मालूम होता है ! देख रहे थे, कि किस बुरी तरह हम लोगों को घूर रहा था, और जब वह डालियों का हिसाब देखा है, तो किस तरह उसने 'हूँ', 'हूँ' कहा है । तुम सच मानो, वह हम दोनों को खा जायगा और डकार भी न लेगा ।"

हमने कहा—"मिरज़ा जी, तुमने अभी देखा ही क्या है, वह पाँसा फेंका है, कि बस देखते ही रह जाओ । देखते तो रहो, राजा साहब के कन्धों पर होगी बन्दूक और शिकार हो जायँगे यह मैनेजर साहब !"

मिरज़ा जी को हमारी इन बातों का यक़ीन तो ख़ैर नहीं आया, मगर यह कह कर चुप हो गए, कि "अच्छा साहब देखना है अब आपके कमाल भी ! मगर यह राक्षस आया बुरा है, यह बताए देता हूँ ।"

मैनेजर साहब के आ जाने के बाद हम लोगों ने राजा साहब के यहाँ का आना-जाना जान-बूझ कर कम कर दिया । मगर कभी-कभी राजा साहब के सलाम को हो ज़रूर आते थे । और मैनेजर साहब भी कुछ पेंग बढ़ा लेते थे, मगर इस तरह, कि मैनेजर साहब को अब इसका पूरा यक़ीन था, कि हम लोग उनके बीच में खुद आना नहीं चाहते । राजा साहब के यहा अब दाँतों से पैसा दबाया जाने लगा था, और मैनेजर साहब पैसे के तीन धेले भुनाते थे । हम लोगों का जो नुक़सान हो रहा था, उसको तो हमारा ही दिल खूब जानता था । मगर हम अपनी घात में हर वक़्त थे । क़िस्मत तो देखिए, कि राजा साहब को आ गया बुख़ार, और यह ख़बर सुनते ही हम और मिरज़ा जी दोनों राजा

साहब के यहाँ जा पहुँचे और बीमारी में उनकी जो ख़िदमत हम से हो सकती थी, वह की। मैनेजर साहब बेचारे ख़ुद अपने तोंद का बोझा जाने क्यों कर उठाए हुए थे! वह भला रातों को जाग-जाग कर राजा साहब की क्या ख़िदमत करते! दूसरे यह, कि हम लोग ख़ुद उनको टाल दिया करते थे, ताकि राजा साहब के दिल में बस हम ही लोगों की जगह बनी रहे। राजा साहब ख़ुद हम लोगों से आराम करने के लिए कहते थे, मगर हम हमेशा यही कह दिया करते थे, कि भला यह कैसे हो सकता है, कि सरकार तो बुख़ार में पड़े रहें, और हम पड़ कर सोएँ। हम भी अगर सिर्फ़ रियासत के मैनेजर होते, तो यह हो सकता था। राजा साहब यह सब कुछ सुनते थे और रह जाते थे। एक दिन राजा साहब की तबीयत भी ज़रा अच्छी थी, मैनेजर साहब भी मौजूद न थे, और मौक़ा अच्छा था, कि हमने मिरज़ा जी को आँखों का इशारा किया, और वह किसी बहाने से बाहर जा कर लौट आए। थोड़ी ही देर में एक आदमी ने आ कर हमसे कहा—"आपके यहाँ से और मिरज़ा जी के यहाँ से खाना आ गया है।"

हम कुछ कहने ही वाले थे, कि राजा साहब एकदम से चौंक पड़े—"आपके यहाँ से खाना आया है। यह भी क्या, कब खाना आया है?"

वह आदमी बोला—"सरकार दोनों वक़्त इन दोनों साहबों के घर ही से खाना आता है।"

राजा साहब ने दोनों हाथों से सर पकड़ लिया और बोले—"क्यों भई, यह क्या नई बात, अब इस तरह भी ज़लील करोगे?"

हमने कहा—"सरकार हम यों तो नमक-ख़्वार हैं, मगर मैनेजर साहब का यह कहना भी बर्दाश्त नहीं कर सकते, कि राजा साहब की रोटियों पर पले हुए कुत्ते हैं, और राजा साहब के दस्तरख़्वान की हम लोग मक्खियाँ हैं।"

राजा साहब का चेहरा ग़ुस्से से सुर्ख़ हो गया, और होंठ काटने लगे! हमने जब देखा, कि ताव ठीक है, तो अपना असली झटका उसी वक़्त छोड़ दिया और कहा—"सरकार हमको कुछ अपनी जान भी अज़ीज़ है, और अपने से ज़्यादा सरकार की जान। बीमारी में तो हम सरकार को छोड़ ही नहीं सकते। मैनेजर साहब जब हुज़ूर के सौतेले रिश्तेदारों के यहाँ गए, उसी वक़्त मेरा माथा ठनका था और मैंने यह तय कर लिया था, कि कुछ भी हो, सरकार की बीमारी के ज़माने में हम दोनों सरकार के पास ही रहेंगे। हुज़ूर अगर कल हम लोग न होते, तो क्या होता?"

राजा साहब बीमारी ही में उठ कर बैठ गए और बोले—"क्या हुआ था कल? बताओ तो सही?"

मिरज़ा जी ने कहा—"हुज़ूर, अब जाने भी दीजिए!"

राजा साहब ने कहा—"जाने कैसे दें? तुम को मेरी ही क़सम, बता दो मुझे।"

हमने उठ कर राजा साहब के पैर पकड़ लिया और कहा—"सरकार बीमारी में ग़ुस्सा न करें, जो आफ़त हम सब पर आने वाली थी, वह टल गई। अब उसका क्या ज़िक्र!"

राजा साहब ने कहा—"देखो, मैंने अपनी क़सम दी है।" हमने फ़ौरन बाहर जा कर एक मरा हुआ कुत्ता उठवाया, जो उसी वक़्त के लिए रक्खा गया था, और राजा साहब के सामने ला कर दिखाते हुए कहा—"बस, इसे सरकार देख लें!"

राजा साहब ने कुत्ते को ले जाने का इशारा करते हुए कहा—"यह क़िस्सा क्या है, आख़िर?"

हमने कहा—"सरकार, बात यह है, कि हुज़ूर के खाने-पीने की जो चीज़ भी आती थी, वह मैं या मिरज़ा जी इस कुत्ते को थोड़ी-सी खिला देते थे, कल जो यख़नी आई, तो उसका रङ्ग बदला हुआ था। मैंने उस कुत्ते को थोड़ी-सी यख़नी पिलाई और एक ही घूँट में यह कलाबाज़ी खा गया।"

राजा साहब ने गुस्से से काँप कर कहा—"समझ गया! बदमाश......नमकहराम...बड़ा मैनेजर का बच्चा है!! ख़बरदार उसे मेरे सामने न आने देना!"—यह कह कर राजा साहब ने लेटे ही लेटे एक हुक्म लिखा और हमारे हवाले कर दिया। इस हुक्म में मैनेजर साहब की अलहदगी के साथ ही साथ उनकी जगह हमको मैनेजर और मिरज़ा जी को ख़ज़ानची मुक़र्रर किए जाने के दो हुक्म और थे।

अब हम राजा साहब के मैनेजर हैं, और मिरज़ा जी ख़ज़ानची! हमारी पाँचों उँगलियाँ घी में हैं!! और राजा साहब का सर कड़ाई में! देखें, रियासत कब कोर्ट होती है?

राजा साहब का दिवाला

हमारे राजा साहब के ख़ज़ाने का बस एक ही रास्ता था। यानी रुपया बहने वाला रास्ता! आमदनी वाला रास्ता कभी बनाया ही नहीं गया और क्यों बनाया जाता। कोई हमारे राजा साहब, सौदागर थे, व्यापारी थे या दुकानदार थे? आख़िर क्या थे, जो आमदनी की भी फ़िक्र करते। उनको परमात्मा ने राजा बनाया था, उनकी बला को फ़िक्र होती, रुपया जोड़ने की! रईस का काम ही यह होता है, कि वह आँखें बन्द कर के, रुपया पानी की तरह बहावे, जिस तरह हमारे राजा साहब रुपया बहा रहे थे।

समुन्दर में भी अगर दरिया पानी न लाया करें, बल्कि समुन्दर ही अपना पानी बहाना शुरू कर दे, तो कुछ ही दिन के बाद दुनिया के जितने समुन्दर हैं, वह सब सूख कर रेगिस्तान बन जाएँ। राजा साहब के ख़ज़ाने में भी गूलर का फूल, तो पड़ा हुआ था नहीं जो वह कभी ख़ाली ही न होता।

हम लोग दोनों हाथों से उनको लूट रहे थे, और हमको लूटने का हक़ भी था, इसलिए कि उनके पास रुपया था, और हमारे पास अक़्ल! नतीजा यही हुआ, कि हम लोग घुन की तरह अन्दर ही अन्दर राजा साहब को खोखला कर रहे थे, और राजा साहब, आँखों में सुरमा लगाए, कानों में तेल डाले, और अक़्ल पर क़ुफ़्ल लगाए, बिल्कुल बे-फ़िक्र बैठे थे, अपनी गद्दी पर। उनको तो ख़ैर इसकी भी ख़बर नहीं थी, कि उनकी पूँजी का क्या हाल है, मगर हम और मिरज़ा साहब दोनों जानते थे, कि अब राजा साहब के ख़ज़ाने में, बस धूल उड़ रही है। क़रज़ में बोटी-बोटी बँध चुकी थी, जहाँ-तक हो सका, हम दोनों ने राजा साहब की ख़ैर-ख़्वाही में, कभी कोई गाँव बिकवा दिया, कभी कोई कोठा, मगर ख़ैर मिरज़ा साहब ने और हमने एक-एक मकान अपने लिए ज़रूर ख़रीद लिया था, नहीं तो यह हराम की कमाई जिस तरह आती थी, उसी तरह उड़ जाती थी। आख़िर एक दिन हमने मिरज़ा साहब से कहा—"अरे भाई, मिरज़ा साहब, यह बताओ, कि अब आख़िर यह गाड़ी चलती हुई मालूम नहीं होती, सुना है, कि सेठ गिरधारी लाल और लाला मुकुन्दमल की तरफ़ से—दावे भी हो रहे हैं। सवाल यह है, कि हम लोग आख़िर क्या करें?"

मिरज़ा साहब ने चौंक कर कहा—"कमाल कर दिया तुमने, मैं ख़ुद ही इसी वक़्त बिल्कुल यही बात तुम से कहने वाला था। बात यह है, कि इन तिलों में जितना तेल था, वह हम निचोड़ चुके हैं, दूसरी बात यह है, कि हम लोग ठहरे ग़रीब आदमी, हम अमीरों की अमीरी का तो साथ दे सकते हैं, अमीरों की—ग़रीबी को भला कैसे समेट सकते हैं, यहाँ ख़ुद अपना पतला हाल है"।

हमने कहा—"वही तो मैं भी कह रहा हूँ, कि यहाँ से तो अब न कुछ मिल सकता है, न राजा साहब ख़ुद कुछ दे सकते हैं, उनको ख़ुद लेने के देने पड़े हैं, कल राजा साहब ने दो मोटरें बेच डालीं।"

मिरज़ा साहब ने बात काट कर कहा—"मोटर! तुम मोटर को लिए फिर रहे हो। रानी साहिबा का न जाने कितना ज़ेवर जा चुका है, यानी अब यह हाल है, कि ज़ेवर तक बिकने की बारी आ गई है। सारे नौकरों की तनख़्वाहें एक-एक साल की बाक़ी हैं।"

हमने कहा—"ख़ैर पहिले तो वह मारते, खाते रहते थे, इसलिए उनको परवा भी न होती था, अब वह बेचारे बेहद परेशान हैं और एक-एक दो-दो करके खिसक रहे हैं।"

हम लोग यह बातें कर ही रहे थे, कि राजा साहब ख़ुद तशरीफ़ ले आये, सूरत पर परेशानी बरस रही थी और मालूम यह होता था, कि जैसे बीमार हों।

राजा साहब ने आते ही कहा—"अच्छा आप लोग तो यहीं बैठे हैं, मैंने तो अभी मिरज़ा साहब को बुलाने के लिए आदमी भेजा है, भाई, इस चन्दा ने तो अजीब तमाशा किया है।"

मिरज़ा साहब ने कहा, क्यों खैरियत तो है। "कैसा तमाशा ?" राजा साहब ने कहा—"दो महीने से उनको मैं तनख्वाह नहीं भेज सका हूँ, मगर जिस शख्स ने लाखों उनको खिला दिया हो उसके लिए दो हज़ार की रकम भी भला कोई बात हो सकती है। मैं कोई उनकी तनख्वाह मार तो लेता नहीं। दूसरे उनको तो मुहब्बत का दावा था। मुहब्बत में यह कारोबार कैसा, कि आपने मुझे यह खत भेजा है, लो पढ़ो।" हमने खत लेकर पढ़ना शुरू किया।

सरकार ! खुदा हुज़ूर के इकबाल में तरक्की दे। मुझे यह लिखते हुए शरम आती है, मगर अम्माँ की वजह से मजबूर होकर लिख रही हूँ कि तनख्वाह के बगैर हम लोगों की बसर होना मुश्किल है। हर तरफ़ की क़रज़दारी के मारे अलग नाक में दम है। और अब तो कहीं से क़रज़ भी नहीं मिलता। मैं इस तरह कब तक हुज़ूर का नाम लेकर बैठ सकती हूँ। अगर अकेली मैं ही होती तो आप की मुहब्बत के सहारे भी जी सकती थी, या अगर मर भी जाती तो आप की दी हुई मौत मरती, मगर और सब को मैं आखिर क्या करूँ ? अब या तो हुज़ूर हमारी इस मुसीबत को दूर करें, वरना आप खुद जानते हैं, कि मैं पराए के बस में हूँ। अम्माँ मेरे लिए दूसरी नौकरियाँ ते कर रही हैं, मगर मैं यह जानती थी कि आपने हाथ पकड़ा है तो आप ही की हो कर रहूँ। इसीलिए यह खत लिख रही हूँ कि कहीं मुझे किसी और के सर न मढ़ दिया जाए। इस खत के जवाब में दोनों महीनों की तनख्वाह फ़ौरन भिजवा दीजिए। आपकी लौण्डी,

चन्दा।

राजा साहब

हम तो गए राजा साहब को नए साल की बधाई देने, वहाँ देखते क्या हैं, कि राजा साहब अलग मुँह लटकाए बैठे हैं, और मिर्ज़ाजी अलग !

पृष्ठ—६८

हमने ख़त पढ़ कर कहा—"यह तो ज़ाहिर ही है हुज़ूर, कि वह बड़ी बाज़ारू औरत है, इसके यहाँ तो जब तक रुपया आप बरसायेंगे, उस वक़्त तक वह आप की है और अगर वह ख़ुद भी चाहे तो उसके अज़ीज़ रिश्तेदार भला क्योंकर मान सकते हैं।"

राजा साहब ने कहा—"वह तो ख़ुद बाज़ारू औरत है, मगर मैं तो यह देख रहा हूँ कि आजकल जिसको देखिए मुझसे दूर भागता है, ख़ुद मेरे रिश्तेदार, मेरे वफ़ादार नौकर, मेरे दिली दोस्त, सब ही की नज़रें तो मुझ से बदली हुई हैं।"

मिरज़ा साहब ने कहा—"लो भई अब हम लोग भी यह बात नहीं कह सकते जो अरज़ करने आए थे, नहीं तो हमारा शुमार भी इन ही सब में हो जाएगा।"

राजा साहब ने जल्दी से कहा—"क्या बात है। तुम को मेरी ही क़सम, जो वह बात छिपाओ।"

मिरज़ा साहब ने कहा—"आप बात-बात पर अपनी क़सम देकर ऐसा मजबूर कर देते हैं कि मैं क्या कहूँ! हुज़ूर अब बात कही जाए तो मुसीबत, नहीं कहते तो क़सम चढ़ा दी है आपने।"

राजा साहब ने कहा—"अब तो बतानी ही पड़ेगी वह बात।"

मिरज़ा साहब ने कहा—"क्या कहूँ हुज़ूर इतना बड़ा इल्ज़ाम कैसे सर पर ले लिया जाए कि हम भी हुज़ूर का साथ छोड़ना चाहते हैं। दिल तो यह चाहता है कि जहाँ हुज़ूर का पसीना गिरे वहाँ अपना ख़ून बहा दें, मगर बात कुछ ऐसी आ पड़ी है कि अब, न तो कहते बन पड़ती है, न छुपा ही सकते हैं।"

हमने कहा—"अजब तरह की बातें कर रहे हो, मिरज़ा साहब, हुज़ूर अपनी क़सम दे चुके हैं, इसका तो ख़्याल करो।"

मिरज़ा साहब ने अपने चेहरे पर सख़्त बेचैनी पैदा करते हुए कहा—"अब सरकार पूछ रहे हैं, तो कहना ही पड़ता है कि बम्बई के सेठ हाशिम भाई क़ासिम भाई के यहाँ हम दोनों को नौकरी मिल गई है, पाँच पाँच सौ रुपया महीना, रहने के मकान, सवारी के लिए मोटर, खाना पीना उनके साथ, ऐसी नौकरी इस ज़माने में बड़े-बड़े एम० ए० और बी० ए० पास तक नहीं पाते, मगर हुज़ूर के इक़बाल से जगह मिल गई है। शुरू-शुरू में तो हमने मज़ाक़ समझ कर अरज़ी दे दी थी, मगर वहाँ अरज़ी मन्ज़ूर हो गई और हम लोगों के नाम से एक-एक साल की तनख़्वाहें भी बैंक में जमा कर दी गई और हमको बुलाने के लिए सफ़र ख़र्च के लिये पाँच-पाँच सौ रुपया भी आयगा।"

राजा साहब ने ख़ुश होकर कहा—"भाई यह तो बड़ी अच्छी बात हुई।"

हमने कहा—"क्या ख़ाक अच्छी बात हुई। हम ग़रीब सही, मगर वफ़ादार ज़रूर हैं। हम न हुज़ूर के नौकर थे, न चाकर, मगर इसी में ख़ुश थे, कि हुज़ूर के ख़ादिम हैं, अब जाना तो ख़ैर पड़े ही गा, इसलिए, कि ऐसी नौकरियाँ बार-बार नहीं मिला करतीं, मगर इस दरबार से दूर रहने का ख़्याल दम निकाले लेता है और समझ में नहीं आता कि—हुज़ूर से दूर रह कर कैसे रह सकेंगे हम लोग।"

राजा साहब ने कहा—"अरे भाई आते-जाते तो रहोगे ना, मगर यह तो हिमाक़त होगी कि ऐसी उमदा नौकरी को छोड़ दिया जाए। मेरी रियासत का हाल ऐसा नहीं है कि मैं तुम से कहूँ, कि लो यह पाँच सौ रुपया महीना और लात मारो इस नौकरी पर, तुम्हारी इस नौकरी पर मुझ से ज़्यादा ख़ुश होने वाला और कौन हो सकता है।"

राजा साहब देर तक हमारी जुदाई पर ख़ुद आँसू बहाने की जगह हमारे ही आँसू पोंछते रहे और जब हम दोनों उनके पास से उठने लगे तो बोले—"जाने से पहिले मुझे इतना मौक़ा तो ज़रूर ही देना, कि मैं तुमको रुख़सत कर सकूँ।"

मिरज़ा साहब ने गोया आँखों में आँसू भर कर कहा—"हुज़ूर अब दिल न तोड़िए।"

राजा साहब भी चुप हो गए और हम दोनों वहाँ से चले आए। हमारा और मिरज़ा साहब का प्रोग्राम अब भी था, कि किसी और रईस को ढूँढने निकलेंगे, लिहाज़ा तीन चार दिन के बाद राजा साहब को बता दिया कि हम दोनों परसों रुख़सत होने वाले हैं। राजा साहब ने इसी दिन से हम दोनों को रुख़सत करने के इन्तज़ाम शुरू कर दिए। दावत, जोड़े, तोहफ़े और रुख़सती की रक़म वग़ैरह। दूसरे ही दिन रात को हम दोनों की दावत थी। दावत में वह धूम-धाम तो थी नहीं जो हमेशा हुआ करती थी, इसलिए कि अब तो बेचारे की हालत ही ख़राब थी, फिर भी ज़ोरदार थी दावत। दावत के बाद हम दोनों को एक-एक क़ीमती जोड़ा, एक-एक घड़ी और एक-एक चेक पाँच-पाँच सौ का दिया गया।

दूसरे ही दिन हम दोनों पहिले चेक भुनाने पहुँचे कि न जाने इस दिवालिया राजा का चेक सच्चा भी है, या नहीं, मगर ख़ैर रुपया मिल गया और हम दोनों इसी रात को लखनऊ से चल कर कलकत्ता पहुँच गए, बम्बई से ज़्यादा हम को कलकत्ता में कामयाबी की उम्मीद थी, इस लिए, कि यहाँ बम्बई की तरह लोग रईस मिलते हैं, बल्कि रईस बिगड़ने के लिए ही यहाँ आते हैं और हम भी रईस बनाना नहीं, बल्कि रईस को बिगाड़ने का आर्ट जानते हैं।

राजा साहब से बिछुड़े हुए दो साल हो गए हैं। सुना है, कि अब तो बेचारे बड़े धर्मात्मा हो गये हैं। साधू बने हुए हैं। अपने इलाक़ा के एक मामूली से मकान में रहते हैं। सारी रियासत में सिर्फ़ यही एक मकान अब उनका है, बाक़ी इलाक़ा बिक-बिका कर ख़त्म हो गया और राजा साहब ने फ़क़ीरी ले ली। वह तो कहिये कि राजा साहब के पास रुपया ही ज़्यादा न था, वरना हम ऐसे बेवफ़ा थोड़े ही हैं, कि राजा साहब को छोड़ देते !